www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-8 * अंक-2 * मुम्बई * फरवरी-2017 * मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज के स्थापक युगप्रवर्तक
महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ का ७३वाँ वार्षिकोत्सव के कुछ चित्र

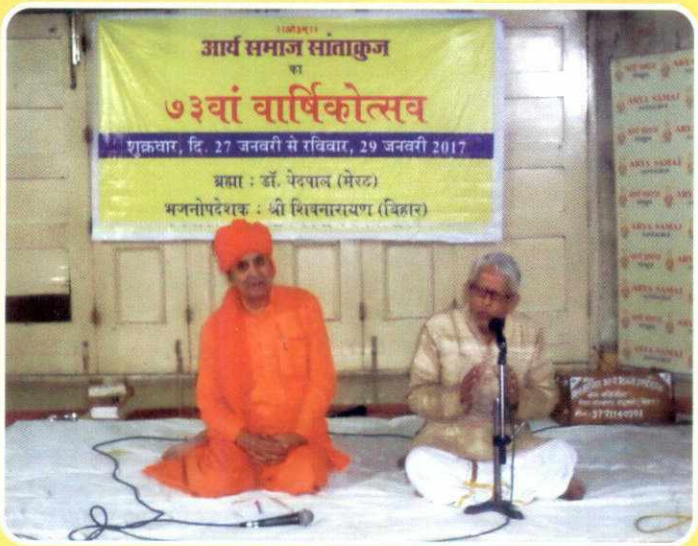

डॉ.वेदपाल मेरठ प्रवचन करते हुए साथ में बैठे है-स्वामी यज्ञमुनि जी

भजनोपदेशक श्री शिव नारायणजी (बिहार) भजन गाते हुए तथा अन्य सहयोगी वाद्य यंन्त्रों पर

यज्ञ करते हुए यजमान गण

उपस्थित श्रोतागण

www.thearyasamaj.org

हम उत्तम बुद्धि व ज्ञान की वाणियों का सेवन करें

डा. अशोक आर्य

मानव जीवन में प्राणायाम का विशेष महत्व है। इसलिए इसे पुरुदंसस कहा गया है। यह प्राणायाम ही हमें उत्तम बुद्धि देने वाला है, हमें उत्तम बुद्धि रुपि धन का भण्डारी बनाता हैं, इस धन से हमें सम्पन्न करता है। उत्तम बुद्धि का भण्डारी बनाकर प्राणायाम के ही कारण ज्ञान की वाणियों अर्थात वेद के आदेश का सेवन करने वाला यह हमें बनाता है। प्राणायाम के ही कारण हम ज्ञान की वाणियों का सेवन कर पाते हैं। इस बात का परिचय इस मन्त्र के स्वाध्याय से हमें इस प्रकार मिलता है:

अश्विना पुरुदंससा नरा श्वीरया धिया ।
धिष्ण्या वनतं गिर: ।। ऋग्वेद १.३.२ ।।

इस मन्त्र मे चार बातों पर प्रकाश डाला गया है:-

१ प्राण अपाण गतिशील रहें

मन्त्र कह रहा है कि हे प्राण तथा अपाणों ! आप हमारे पालक बनो। आप ही हमारे पूरक कर्मों को करने वाले बनो। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि हमारे प्राण तथा अपान अर्थात हम जिस श्वास के लेने व छोड़ने की क्रिया करते हैं, वह क्रिया ही हमारी पालक है, हमारा पालन करने वाली है, हमें जीवित रखने वाली है। हमारे जीवन को सुख पूर्वक चलाने वाली है। हम इस के आधार पर ही जीवित हैं। जब इवास की यह क्रिया रुक जाती है तो हम जीवन से रहित होकर केवल मिट्टी के ढेले के समान बन जाते हैं। गत मन्त्र में भी लगभग इस तथ्य पर ही प्रकाश डालते हुए कहा गया था कि हमारे प्राण व आपान क्रियाशील हैं। यह क्रिया ही मानव का ही नही अपितु प्रत्येक जीव का, प्रत्येक प्राणी का पालन करने वाली हों। भाव यह कि हमारे प्राण (श्वास लेने की क्रिया) तथा अपान (श्वास छोडने की क्रिया) निरन्तर चलती रहे, कार्यशील बनी रहे। हम जानते ही हैं कि यह प्राण अपान ही हमारे अन्दर जीवनीय शक्ति भरते हैं। इसके बिना हम एक पल भी जीवित नहीं रह सकते। इसके बिना हम क्रियाहीन होकर मृतक कहलाते हैं।

२. गतिमान व क्रियाशील बनें

इस प्रकार हमारे शरीर में प्राण व अपान क्रियाशील रहते हैं तो हम भी जीवित कहलाते हैं, क्रियाशील रहते हुए अपने जीवन को निरन्तर आगे ले जाने का यत्न करते हैं। अनेक प्रकार की उपलब्धियां पाने का यत्न करते हैं। सदा उन्नति के पथ पर ही अग्रसर रहने का प्रयास करते रहते हैं। यदि प्राण- अपान हमारे शरीर में गतिमान नहीं होते तो हम क्रियाविहीन हो जाते हैं, जिसे मृतक की संज्ञा दी जाती हैं। इस लिए मन्त्र जो दूरी बात हमें समझाने का यत्न कर रहा है, वह है कि हमारे प्राण व अपान इस प्रकार सदा कर्म शील रहते हुए हमें आगे तथा ओर आगे ले जाने वाले बनें तथा हमारी उन्नति का करण बनें । स्पष्ट है कि हम जीवन में जो कुछ भी पाते हैं, यहां तक कि उस प्रभु का जो स्मरण भी हम करते हैं तो वह भी प्राण ओर अपान के ही कारण ही लेते हैं। इसलिए हम पिता को प्रार्थना करते हैं कि हे पिता। हमारे प्राण व आपान को सदा गतिमान, सदा क्रियाशील बनाए रखे।

१ स्वाध्याय द्वारा सोम कण सुरक्षित करें

मन्त्र के तृतीय भाग में कहा गया है कि जब शरीर में प्राण व अपान गतिमान होते हैं तो हम भी गतिमान होते हैं, क्रियाशील होते हैं। क्रियाशील होने के कारण ही हम मे स्वाध्याय की शक्ति आती है। स्वाध्याय कर ही हम वह शक्ति पा सकते है, जिसमें जीवन है। जिसमें जीवन ही नहीं है, मात्र एक मृतक शरीरवत, लाश मात्र है वह क्या कुछ करेगा, वह तो क्रियाविहीन होता है। इस कारण किसी भी क्रिया को करने की उससे कल्पना भी नहीं की जाती। इस लिए शरीर में प्राण व अपान का निरन्तर चलते रहना आवश्यक है। जब प्राण व अपान क्रियाशील रहते हैं तो शरीर क्रिया शील रहता है तथा क्रियाशील शरीर ही कुछ करने की क्षमता रखता है। एसे शरीर में ही स्वाध्याय की शक्ति होती है तथा हम स्वाध्याय के माध्यम से अनेक प्रकार के ज्ञान का भण्डार ग्रहण करने के लिए सशक्त होते हैं। इस तथ्य पर ही मन्त्र के इस भाग मे उपदेश किया गया है कि यह हमारे प्राण तथा अपना हमें उत्तम बुद्धि देने वाले हों। जब हम प्राण तथा अपान को संचालित करते हैं तो इस की साधना से हमारे शरीर में सोमकण सुरक्षित होते हैं तथा हमारी बुद्धि को यह कण तीव्र करने का कारण बनते हैं।

४. हमारी बुद्धि तीव्र हो

मन्त्र कहता है कि प्राण व अपान के सुसंचालन से हमारे शरीर में बुद्धि को तीव्र करने वाले जो सोम कण पैदा होते हैं, उनसे हमारी बुद्धि तीव्र होती है। यह तीव्र बुद्धि ही होती है जो मानव को कभी कुण्ठित नही होने देती। जिस प्रकार कुण्ठित तलवार से किसी को काटा नहीं जा सकता, कुण्ठित चाकू से सब्जी को भी ठीक से काटा नहीं जा सकता, ठीक इस प्रकार ही कुण्ठित बुद्धि से उत्तम ज्ञान भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार ही जिन की बुद्धि कुण्ठित नहीं होती, जिन की बुद्धि तीव्र होती है, वह बुद्धि किसी भी विषय को बडी सरलता से ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार मन्त्र कहता है कि अपनी इस तीव्र बुद्धि से हम ज्ञान की वाणियों का अर्थात वेद के मन्त्रों का सेवन करें, इन का स्वाध्याय करें, इन का चिन्तन करें, इनका मनन करें, इनको अपने जीवन में धारण करें।

मन्त्र का भाव है कि हम अपने जीवन में प्राणायाम के द्वारा प्राण साधना करें। इस प्राण साधना से ही हम तीव्र बुद्धि वाले बन कर हम अपनी इस बुद्धि से ज्ञान की वाणियों के समीप बैठ कर इन का उपासन करे, भाव यह कि हम वेद का स्वाध्याय करें। हम बुद्धि को व्यर्थ के विचारों में प्रयोग न कर इसे निर्माणात्मक कार्यों में लगावें।

डा. अशोक आर्य
१०४-शिप्रा अपार्टमेन्ट
कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद,
चलभाष ०९७१८५२८०६८

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक २ (फरवरी-२०१७)

- दयानंदाब्द : १९३, विक्रम सम्वत् : २०७३
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११७

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
हम उत्तम बुद्धि व ज्ञान की वाणियों का सेवन करें	२
सम्पादकीय	३
योगिराज दयानन्द	४-५
''आओ! आर्य ग्रन्थों पर दृष्टिपात करें''	६
नारीन सशक्तिकरण	७-८
विचार शक्ति का चमत्कार	८
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा धर्म का मूल...	९-१०
१. आईए, वेदाध्ययन का व्रत लें	११-१२
विश्वास की परीक्षा	१३
''प्रभो! हमें ज्ञान दो, हमें काम दो.....	१४-१५
श्री कृष्ण ईश्वरोपासक थे	१६

सम्पादकीय

आत्मा

वैदिक मान्यता त्रैतवाद पर आधारित है। आत्मा (शरीर धारण करने से जीव) प्रकृति (समस्त जड़ पदार्थ) व परमात्मा। इन तीनों का न आदि है न अन्त। आत्मा शरीर (जड़) धारण करके शरीररुपी साधन से कर्म करते हुए कर्मफल के बंधन में बंधती चली जाती है। हम किसी भी व्यक्ति को उसके नाम से सम्बोधन करते हैं। महान विभूतियों के नाम को स्मरण करते हैं। महापुरुषों के नामों और कार्यो को लेकर प्रशंसा आपसी -विवाद भी करते रहते हैं। हमने अपने व्यवहार में देखा है कि कई व्यक्ति वर्षों पहले अपना कार्य करके जा चुका है परन्तु संस्थायें आज भी उन व्यक्तियों से क्योंकि मतभेद के कारण कमियां निकालने में लगे रहते हैं। महापुरूषों की निरन्तर स्तुति में सारी शक्ति लगा देते हैं। परस्पर वाद -विवाद दंगे- फसाद तक की नोबत आ जाती है।

सोचने वाली बात है कि क्या यह सही है। तत्त्वज्ञान को समझने से संभवतः इस समस्या का हल निकल सकता है। आत्मा जब देह में प्रवेश करती है तो निरन्तर अपनी उत्तरोत्तर स्थिति को प्राप्त होते हुए कार्यों को करते हुए जब देह में सामर्थ नहीं रहता है तब निकल जाती है। आत्मा का अस्तित्त्व इस देह से पहले भी था इस देह से छूटने के बाद भी रहेगा। सिर्फ नये शरीर के साथ जुडने से नाम बदल सकता है। अब सोचने वाली बात यह है कि नाम किसका था जड़ शरीर का, जड़ शरीर में निवास कर रही आत्मा का अथवा जड़ आत्मा दोनों का। आत्मा तो मुसाफिर है। देह में वास किया तो देह का नाम अमुक -अमुक पड़ा। देह से निकल गयी तो क्या उस निर्जीव पडे शरीर का नाम बना रहेगा। कहने का तात्पर्य है कि आत्मा अपने वास के दरम्यान इस जगत् रुपी चलचित्र में अपना खेल खेलकर चली जाती है और नये खेल में लग जाती है। हम उस के एक जीवन के खेल का रोना रोते रहते हैं। जब कि हमें इतिहास से प्रेरणा लेकर किसी व्यक्ति द्वारा दिये गये अच्छे कार्यों का अनुसरण एवं गलत किये गये कार्यों को न दोहराने का सबक लेना चाहिए। यही वर्तमान में जीने का वैदिक मार्ग है। तो आइये जब तक शरीर है, महापुरुषों, व्यक्तियों के अच्छे कार्यों को आगे बढ़ायें और हमारी दृष्टि में किये गये गलत कार्यों को इस वर्तमान में एवं भविष्य में सुधारने का प्रयत्न करें। मेरा नाम संगीत है यह भी तो तभी तक है जब तक आत्मा का वास इस शरीर में है तभी तक आत्मा कहती है कि मैं संगीत हू। देह से निकल ने के बाद आत्मा संगीत कहां रही। जिस आत्मा के साधन को संगीत कहा वह तो अब जड़ है।

- संगीत आर्य
9323 573 892

www.thearyasamaj.org

योगिराज दयानन्द

स्वामी ज़गदीश्वरानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द को समझने में लोगों ने भारी भूल की है। बहुत-से व्यक्तियों को यह भ्रम है कि ऋषि दयानन्द केवल एक समाज-सुधारक थे। उन्होंने समाज में फैली रूढ़ियों और पाखण्डों का खण्डन किया और बस। परन्तु वस्तुत: देखा जाए तो समाज सुधार तो स्वामीजी के कार्य का एक अङ्गमात्र था। उनका जीवन तो सर्वतामुखी था। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक, शैक्षणिक और नैतिक सभी क्षेत्रों में काम किया। वे आप्त पुरुष थे, तत्त्वदर्शी एवं परोक्षदर्शी थे। वे आध्यात्मिक विद्या के धनी और उच्चकोटि के योगी थे। अपने लगभग २० वर्ष के अल्प प्रचार-काल में उन्होंने जो महान् कार्य किया वह उन्हीं के शब्दों में बिना योग-बल के असम्भव था। महर्षि का आरम्भिक जीवन योगमय जीवन था। अत: सबसे पूर्व उसी के सम्बन्ध में कथन करते हैं।

चौदह वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चढ़े नैवेद्य को खाते हुए चूहे को देखकर ऋषिवर के हृदय में सच्चे शिव को प्राप्त करने की लालसा जागी और अपनी बहन तथा प्रिय चाचा की मृत्यु देखकर मृत्युञ्जय बनने की इच्छा बलवती हुई। शिव-प्राप्ति और मृत्युञ्जय बनने का मार्ग उन्हें योगाभ्यास बतलाया गया। अपनी साध को सिद्ध करने के लिए २१ वर्ष की अवस्था में वे अपन धन-धान्य से भरपूर परिवार को, माता-पिता के प्यार और दुलार को तथा बन्धु-बान्धवों और मित्रों के स्नेह को छोड़कर घर से निकल पड़े और चल दिये योगियों की खोज में। जहाँ कहीं किसी सिद्ध अथवा योगी के सम्बन्ध में सुनते, वहीं जा पहुँचते। उन्होंने अनेक कुटियों, आश्रमों और मठों का चक्कर लगाया, अनेक महात्माओं का सत्संग किया, परन्तु तृप्ति नहीं हुई। फिर भी वे निराश और हताश नहीं हुए। होते भी क्यों!

गिरे सौ बार भी बिजली अगर किशते तमन्ना पर।
जो हिम्मतदार हैं मायूस कब होते हैं हासिल से।।

उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा। अन्तत: खोजते - खोजते चाणोद कर्नाली में स्वामी जी महाराज को श्री ज्वालानन्द पुरी और श्री शिवानन्द गिरी के दर्शन हुए। उन्होंने स्वामी जी को आत्मज्ञान-पिपासु जानकर अपने साथ अभ्यास कराया। कुछ समय पश्चात् ये दोनों योगी अहमदाबाद चले गए और स्वामी जी को आदेश दे गए कि एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में आने पर हम तुम्हें योग-विद्या के रहस्य और चरम प्रणाली के विषय में शिक्षा देंगे। योग-जिज्ञासु दयानन्द एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में जा पहुँचे। उन्होंने भी स्वामी जी को सुपात्र जानकर उन्हें योग के भेद और रहस्य बताकर योग के अमूल्य रत्नों से मालामाल कर दिया। इस विषय में स्वामी जी अपने स्वलिखित जीवन-चरित्र में लिखते हैं-

''वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया-सहित सम्पूर्ण योग-विद्या भलीभाँति विदित हो गई, इसीलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वास्तव में उन्होंने मुझपर एक महान् उपकार किया।''

महर्षि यहीं तक सीमित नहीं रहे। जब उन्हें पता लगा कि जो कुछ शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है उससे उच्चतर योग-विद्या को जाननेवाले योगी विद्यमान हैं तो उन्होंने और भी अनेक स्थानों पर घूम-घूमकर योग-विद्या के रहस्य हसतगत किये। परन्तु पूर्ण योगी बनकर भी उन्होंने अपने को छिपाये रखा क्योंकि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वे अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहते थे। एक बार 'पायोनियर' के सम्पादक सिनट ने स्वामी जी से योग के समत्कार दिखाने के लिए कहा था, उसी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कर्नल अलकाट और मैंडम ब्लेवस्तिकी को एक पत्र में लिखा था-

''जो मैंने सिनट साहब से कहा था वह ठीक है। क्यांकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना-दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकि योग के किये-कराये बिना किसी को भी योग का महत्त्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन् सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उसी तमाशे दिखलानेवाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनट साहब को मैंने न दिखलाय और न दिखलाना चाहता हूँ, चाहे वे राजी रहें चाहे नाराज हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया। ऐसी संसार की तमाशे की लीला मेरे साथ लग जाती जैसी मैडम एच.पी. ब्लेवस्तिकी के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या धर्मात्मता की बाते हैं। कि जिससे मनुष्यों की आत्मा पवित्र हो, आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मैडम साहेब आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातो में प्रवृत्त नहीं करता न करात हूँ। **किन्तु कोई चाहे तो योग-रीति सिखला सकता हूँ जिसे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख लेवे।''**

(महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)

योगदर्शन का तीसरा पाद विभूति पाद है। इस पाद में योग के ऐश्वर्यों-योग से होनेवाली सिद्धियों का वर्णन है। बहुत-से लोग समझते हैं कि यह सब गप्प है, परन्तु महर्षि दयानन्द इन सिद्धियों को गप्प नहीं समझते; यह उनके उपर्युक्त कथन स स्पष्ट सिद्ध है। इस विषय में स्वामी जी के जीवन की एक अन्य घटना भी अवलोकनीय है-

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी जी से पूछा, ''भगवन्! पाद क्या सच्चा है?''

ऋषि ने उत्तर दिया-''आप यों सन्देह करते हैं। योगशास्त्र तो अक्षरश: सत्य है। वह कोई पुराण की-सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभवासिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में उत्तीर्ण होने के लिए आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे अनुकूल योग-क्रियाएँ साधें, तो इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।''

www.thearyasamaj.org

स्वामी जी को अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। स्वामी जी अपनी योग-शक्ति के द्वारा दूसरों के मनोगत भावों को जान लिया करते थे।

एक बार एक सज्जन ने स्वामी जी से प्रार्थना की, ''महाराज! अभ्यास में मन लगाने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु मन टिकता ही नही, संकल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।''

स्वामी जी ने व्यङ्ग करते हुए कहा, ''मन नहीं टिकता तो भङ्ग भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो।''

यह उत्तर सुन उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामी जी को उसके भांग पीने की बात का पता नहीं था।

उदयपुर-वास के दिनों में ऋषिवर बहुत प्रात: नौलखा उद्यान वाले सरोवर के किनारे-किनारे गोवर्द्धन पर्वत की ओर जाया करते थे। एक दिन उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द जी ने देखा कि महाराज जल पर पद्मासन लगाये, योगमुद्रा में कमल-दल की भाँति विराजमान थे।

आगरा-निवास के समय स्वामी जी दोनों समय योगारूढ़ हुआ करते थे। किसी-किसी दिन पहरों अचलभाव से ध्यानावस्थित रहते। लोगों ने उनको १८-१८ घण्टे की समाधि लगाते देखा था। जब महाराज प्रयाग पधारे तो भगवान्दास नामक एक व्यक्ति को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। एक दिन उसने छिपकर देखा कि महाराज भूमि से छ: इंच ऊपर शून्य में स्थित थे।

एक अन्य पत्र में महाराज ने मैडम ब्लेवस्तिकी को लिखा था-

''आत्मा मनुष्य-शरीर में अद्भुत कार्य कर सकती है। संसार में (ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त) सभी पदार्थों के स्वरूप और गुणों को जानकर मनुष्य अत्यन्त दूर के पदार्थों का दर्शन, श्रवण आदि की शक्ति प्राप्त कर सकता है, जिसे प्राप्त करने में प्राय: असमर्थ रहता है।''

(पत्र और विज्ञापन)

एक नवाब ने महाराज से पूछा, ''क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहाँ बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले?'' स्वामी जी ने उत्तर दिया. ''योगी लोग इच्छा नहीं करते। सबमें गुप्त ब्रह्म-विद्या है, योगी का उसी को जानने का उद्देश्य है। अत: यदि योगी चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।''

ऋषिवर को यह सिद्धि भी प्राप्त थी। उदयपुर की घटना है। एक दिन श्री राणा सज्जनसिंह जी और सहजानन्द जी आदि सज्जन स्वामी जी के पास बैठे थे। स्वामी जी ने राणा जी से कहा, ''पण्डित सुन्दरलाल जी यहाँ आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए यान का उचित प्रबन्ध कर दिया जाता।'' राणा जी ने कहा, ''भगवन्! यान तो अब भी भेजा जा सकता है।'' इस पर स्वामी जी ने कहा, ''अब तो बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्लवर्ण है और दूसरे के तन पर लाल धवल धब्बे हैं। वे कल यहाँ पहुँच जाएँगे'' महाराज का कहना अगले दिन बिल्कुल ठीक सिद्ध हुआ।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में योग के बहुमूल्य रत्न बिखरे हुए हैं। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और लाभार्थ कुछ यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

''जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमा आदि सिद्धि उत्पन्न होती है। उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है अन्यथा नहीं।'' (यजुर्वेद भाष्य १७.६७ का भावार्थ)

''जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप, संयम) के बल को प्राप्त हो और अनके प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगों को आवश्य सेवन करना साहिए।''

(यजुर्वेद १७.७१ का भावार्थ)

''जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करनेवाले विद्वान् का संग और प्रीति से सम्वाद करते हैं, वे सबके अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं।'' (जयुर्वेद १७.७३ का भावार्थ)

प्राणायाम का वर्णन करके उसके लाभों का वर्णन करते हुए ऋषिवर लिखते हैं-

''बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि सूक्ष्म रूप हो जाता है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा''

(सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

उपासना पद्धति पर प्रकाश डालते हुए योगिराज दयानन्द लिखते हैं-

''जब-जब मनुष्य लोग उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त देश में बैठकर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द लक्षणवाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा में नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली-भाँति उसमें लगा दें।''

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषय)

''जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है, और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है।'' (वही)

ईश्वर के दर्शन कहाँ होते हैं इस तथ्य का सुन्दर निरूपण भी स्वाभी जी के शब्दों में पढ़िये-

''कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदय-देश है उसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश एक स्थान है, और उसी के बीच में जो सर्वशक्तिमान परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई स्थान वा मार्ग नहीं है।''

❑❑❑

www.thearyasamaj.org

"आओ ! आर्य ग्रन्थों पर दृष्टिपात करें"

खुशहालचन्द्र आर्य

यह लेख "वैदिक धर्म आर्य समाज प्रश्नोत्तरी" पुस्तक से उद्धृत है। इस लेख के पढ़ने से सुधि पाठकों को वैदिक धर्म ग्रन्थों की जानकारी बढ़ेगी, जिससे उनकी पढ़ने की रुचि भी बढ़ेगी। इसी उदेश्य से यह लेख लिखा गया है, जो इसी भाँति है:-

प्रश्न:- वेद किसको कहते हैं?

उत्तर :- वेद शब्द का अर्थ- ज्ञान है।

प्रश्न:- वेद कितने हैं और उनमें क्या बतलाया गया है?

उत्तर:- वेद चार है, जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। मनुष्यों को किस तरह के काम करने चाहिए, परिवार, समाज देश और विश्व की उन्नति कैसे हो सकती है, तथा संसार में शान्ति कैसे रह सकती है, ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए आदि जब बातें वेदों में बताई गई हैं। उनसे सबको लाभ मिल सकता है।

प्रश्न:- वेदों का ज्ञान किसने और क्यों दिया?

उत्तर:- वेदों का ज्ञान ईश्वर ने दिया, जो सर्वज्ञ अर्थात् सबकुछ जानने वाला है। ईश्वर ने यह ज्ञान इसलिए दिया कि सब को सुख-शान्ति और आनन्द प्राप्त हो सके। ईश्वर सब का माता-पिता है, हम सब प्राणी उसके बच्चे हैं जैसे मात-पिता, अपने बच्चों की भलाई के लिए उन्हें अच्छी बाते सिखाते हैं, वैसेही ईश्वर ने हमारे कल्याण के लिए वेदों का ज्ञान दिया।

प्रश्न :- वेदों का ज्ञान ईश्वर ने कब, क्यों और किसको दिया?

उत्तर:- यह ज्ञान ईश्वर ने मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में दिया। यदि बाद मे देता तो पूर्व-सृष्टि उसने लाभ से वंचित रह जाती। ईश्वर ने यह ज्ञान शुरू में चार ऋषियों को दिया, क्यो कि मनुष्य उस ज्ञान के बिना कुछ नहीं सीख सकता था और न कुछ समझ सकता था कि कौन-से काम मुझे करने चाहिए और कौन-से काम नहीं। जब तक हमें कोई सिखानेवाला न हो तबतक हम लिखना-पढ़ना नहीं सीख सकते। सृष्टि के आरम्भ में सिवाय ईश्वर के कौन मनुष्य को उपदेश देता? उन चार ऋषियों के नाम जिनको मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया था, वे थे अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा।

प्रश्न:- उपवेद कि ने और कौन-कौन से हैं?

उत्तर:- उपवेद चार हैं। उनके नाम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्व वेद और अथर्वेद है। आयुर्वेद, ऋग्वेदका उपवेद है, इस में शरीर की रक्षा और आरोग्य व तन्दुरुस्ती के उपाय, दवाइयों के गुण और बिमारियों के इलाज आदि का वर्णत है। आजकल आयुर्वेद के ग्रन्थों में से चरक-संहिता और सुश्रुत संहिता प्रसिद्ध हैं। धनुर्वेद, यजुर्वेद का उपवेद है धार उस में धनुष बाण चलाते आदि का सारा विषय है। अघर्ववेद का उपवेद अथर्वेद है जिस में शिल्प-शास्त्रला विषय है।

प्रश्न: वेदों के पुराने भाष्य कौन-से हैं, जिनसे वेदों के अर्थ समझने में सहायता मिल सके?

उत्तर:- वेदों के पुराने भाष्य ब्रह्मण-ग्रन्थ हैं, जिन को महीदास, ऐतरेय, याज्ञवलक्य आदि ऋषियोंने बनाया। इनमें से प्रसिद्ध हैं:-

ऋग्वेद का ब्राह्मण-एवरेय ब्राह्मण,
यजुर्वेदका ब्राह्मण- शतपथ ब्राह्मण,
सामवेद का ब्राह्मण- गोपथ ब्राह्मण।

इन में वेदों में आद शब्दी के अर्थ बताए गए है तथा यज्ञों में उनका प्रयोग बताया गया है।

प्रश्न:- वेदांग कितने और कौन-कौन से हैं?

उत्तर:- वेदांग छ: हैं, इनके नाम ये हैं:-

शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प। इनके पढ़ने से वेदों को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। व्याकरण ग्रन्थों में पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी और पतंजलि-मुनिकृत महाभाष्य प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न:- उपांग कौन-कौन से हैं और उन्हें किन-किन ऋषियों ने बनाया?

उत्तर:- उपांगों को दर्शन-शास्त्र के नाम से भी कहा जाता है। ये छ हैं, जिनमें आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, जगत् की उत्पत्ति और मुक्ति इत्यादि कठिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, इनके नाम निम्नलिखित हैं:-

गौतम मुनिकृत-न्याय-शास्त्र या दर्शन
कणाद मुनिकृत- वैयेषिक-शास्त्र या दर्शन,
कपिल मुनिकृत- सांख्या-शास्त्र या दर्शन,
पतञ्जलि मुनिकृत- योग-शास्त्र या दर्शन,
जैमिनी मुनिकृत- पूर्व मीमांसा-शास्त्र या दर्शन
वेदव्यास मुनिकृत- उत्तर मीमांसा-शास्त्र या दर्शन।

प्रश्न:- ऋषिकृत उपनिषदें कौन-कौन-सी और कितनी हैं तथा उनमें किस-किस विषय का वर्णन है?

उत्तर:- वैसे तो आजकल १५० के लगभग उपनिषदें पाई जाती हैं, पर प्रमाणिक ऋषिकृत उपनिषदें। (ग्यारह) हैं, जिनके नाम ये हैं:-

(१) ईश, (२) केन, (३) कर, (४) प्रश्न, (५) मुण्डक, (६) माण्डक्य, (७) ऐतरेय, (८) तैतिरीय, (९) छान्दोग्य, (१०) वृहदा, (११) श्वेतारणयक।

इनमें ऋशियों ने वेदों और अपने अनुभव के आधार पर ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया है, जो बड़ा शान्ति देने वाला है।

प्रश्न:- धर्म शास्त्र कितने हैं और उनमें से प्रमाणिक कौन-कौन-से हैं?

उत्तर:- जैसे पहले बताया जा चुका है, सब से अधिक प्रामाणिक और मानने योग्य धर्म शास्त्र तो वेद ही हैं। उसके विरूद्ध वचन चाहे किसी भी पुस्तक में पाये जाये, वे मानने योग्य नहीं हो सकते। पुराने ऋषियों के नाम से धूर्त-स्वार्थी लोगों ने कई पुस्तकें लिख डाली हैं तथा अच्छे ग्रन्थों में भी कई प्रक्षेप व मिलावटें कर डाली हैं, जिनके कारण यह पहचानना कठिन हो गया है कि कौन-सा हिस्सा असली और कौन-सा बनावटी है। यह भी विचार पूर्वक पढ़ने से यह बात मालूम हो सकती है। धर्मशास्त्र व स्मृतियों में पहला स्थान मनुस्मृति का है, जिसे वेदों के आधार पर मनु महाराज ने बताया था, पर इसमें भी समय-समय पर बहुत-सी मिलावटें होती रही हैं, इसलिए प्रक्षेप को छोड़कर वेदानुकूल उसके वचनों को ही मानना चाहिए, औरों को नहीं। वासिष्ठ, गौतम, अत्रि, बीधलन, प्रजापति, हारीट, यम, पयशर आदि के नाम पर भी बहुत सी स्मृतियाँ आज कल पाई जाती है, यह इनकी अच्छी बाते वेद और बुद्धि के विरुद्ध होने तथा परस्पर विरूद्ध होने से उनको ऋषिकृत नही माना जा सकता, न उन्हें धर्म के विषय में प्रमाण समझा जा सकता है। आप स्तम्ब पारस्कार, आश्वलायन, गोचिल, जैमिनी, सांख्यायन आदि कृत गृह्य सूत्र भी पाये जाते है, जिनमें संस्कारों का प्रतिपादन है। इनको भी प्राय: स्मृतियों के नामों से कहा जाता है। वेद-विरूद्ध भाग छोडकर, ये सूत्र-ग्रन्थ संस्कार तथा आश्रम-धर्म आदि के विषय में उपयोगी हैं। वेदों की शाखाएं तथा अन्य बहुत-से प्राचीन ग्रन्थ लुप्त प्राय हो चुके हैं जिनको खोजने की जरूरत है।

गोविन्द राम आर्य अण्ड सन्स
१८० महात्मा गान्धी रोड, (दातेत्ता) कोलकता-७००००७

www.thearyasamaj.org

नारी सशक्तिकरण

प्राचीन वैदिक साहित्य के अनुसार समाप्त में नारी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। वह किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नही थी। अर्थववेद में पुरूष और नारी की परस्पर स्थिति और उनके कार्यों के विवेचन की इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:-

''भूमिर्माता द्यौः न पिता''।

(अर्थववेद ६/१२०/२)

अर्थात समाज में पुरुष व नारी का कार्य वही है जो भूमण्डल में पृथ्वी और सूर्य का।

नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि महिलायें स्वंय को संगठित एंव सुदृढ़ बनायें। आत्म निर्भर बनें। साथ ही सामाजिक एंव राष्ट्रीय आंदोलनों का हिस्सा बन कर उनका नेतृत्व भी करें।

यजुर्वेद के एक मंत्र के अनुसार शब्द का निर्माण करने वाली तीन देवियां है:-

त्रिस्त्रो देवर्बहिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना।।

अर्थात् राष्ट्र का निर्माण करने वाली तीन देविया :- मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि। महिलायें राष्ट्र की केवल नींव ही नहीं राष्ट्र रुपी भवन को बनाने में सजाने, संवारने और निरवारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्र की भाषा, भूमि व संस्कृति से ही राष्ट्र का निर्माण होता है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में नारी को बहुत सम्मान दिया गया है।

''मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव''।

''मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद:''

सभी स्थानों पर माता ही प्रथम है। राष्ट्र के निर्माण और उन्नति में महिलाओं का प्रथम योगदान व स्थान है। महिलाएं राष्ट्र की कर्णधार हैं।

ईश्वर ने नारी की शारीरिक क्षमता के साथ मानसिक क्षमता को भी अधिक सबल एवं संतुलित बनाया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह पर स्त्रियों का अधिक नियंत्रण रहता है। महिलाओं का अधिक से अधिक शिक्षित होना अनिवार्य है। महिलाएं सबल एंव सजग होकर देश का उद्धार कर सकती हैं।

महिलाओं का परिवार व समाज में सहभागितापूर्ण सम्बन्ध हों। मार्ग में आने वाली तमाम बाधाओं को दूर कर सकें। इसी सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रोफेसर अमर्त्यसेन ने अपने विचार अपनी पुस्तक "India Economic Development and Social Opportunity. में व्यक्त किए। जिसके अनुसार ''नारी सशस्तिकरण से महिलाओं के साथ पुरुषों व बच्चों पर भी सकारात्मक असर पड़ता है।''

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही देश में प्रगतिशील विचारें का प्रसार होने लगा। देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के साथ भेदभाव रहित समाज की स्थापना पर भी जोर दिया जाने लगा। भारतीय संविधान में इन विचारो को सम्मिलित करते हुए महिला, पुरुष अमीर, गरीब तथा साक्षर निरक्षर सभी को सुरक्षा प्रदान की गई। विधि के समक्ष समता तथा शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया कि संविधान के समक्ष स्त्री व पुरुष में भेद नहीं है।

भारत में महिलाओं के अधिकारों लिये सन् १८१८ में राजाराम मोहन राय ने संघर्ष किया था। उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। प्रारम्भ में कुछ रूढि वादियों ने उनका विरोध किया। किन्तु कईं वर्षों तक अनवरत प्रयास करने पर सन् १८२९ में ब्रिटिश संसद के द्वारा सती प्रथा पर रोक लगाने वाला अधिनियम पारित किया गया। भारत में महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण की दिशा में यह प्रथम प्रयास था।

भारतीय संविधान में महिलाओं की पुरूषों के समान ही आजीविका के अवसर प्राप्त कराने का अधिकार दिया गया। इस के साथ ही महिलाओं के हितों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात से ही देश में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा समय समय पर प्रयास किए गए।

घरेलू उत्पीड़न से सुरक्षा हेतू शरिरिक, मानसिक, मौखिक, आर्थिक तथा यौन उत्पीड़न सहित सभी तरह की पारिवारिक हिंसा से संरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया।

साक्षरता किसी भी देश के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू होने के साथ ही समग्र सामाजिक विकास का पैरामीटर है। स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रियों की शिक्षा शहरी क्षत्रों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी विकसित हुई। इसके अतिरिक्त समय-समय पर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्व शिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रवृत्ति योजना, बालिका छात्रवृत्ति योजना प्रारम्भ की गई। जिसके सकारात्मक परिणाम परिलक्षित हुए।

आज महिलायें देश की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गतिविधियों में समान रूप से भागी बन रही हैं। साथ ही अपनी उच्च प्रबंधकीय क्षमता का प्रदर्शन एंव नेतृत्व भी कर रही हैं। सशक्तिकरण की दिशा में भारतीय महिलाओं का कदम अब पुरूषों की बैसाखी का मोहताज नहीं रहा। महिलाओं में ईश्वर की कृपा से अपार सामर्थ्य एंव क्षमता निहित है।

महिलाओं में एक बहुत बड़ी ताकत एंव शक्ति है। समस्त संसार देश, जाति का भविष्य निर्माण महिलाओं से ही होता है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद ने प्रथम उद्घोष किया था कि यदि हम नारी की शिक्षा के अधिकार से ही वंचित कर देंगे। तो यह समझना कि आने वाली संततियों में आदर्श उत्पन्न होने की सभावनाएं ही समाप्त हो जायेगी।

इसलिए नारी का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है। उन्नति के पथ पर चलते हुए उसे मार्ग के अवरोधी व षडयन्त्रों से भी सावधान रहना होगा/नारी का सतीत्व सदैव से ही सीता की भांति अखंडित रहा है। वह मंदिर में जलते हुए दिये की भाति पवित्र व उज्जवल है। सीता की धवल छवि

www.thearyasamaj.org

पर संदेह करना भी पाप और अपराध है।

एक गीतकार ने लिखा है कि,

''नारियां देश की जाग जायें अगर।
देश खुद ही बदलता चला जायेगा।।
शक्तियां जागरण गीत गायें अगर।
हर हृदय ही मचलता चला जायेगा।।''

नारी देश की शान है। नारी निर्मात्री है, प्रथम गुरू है। यदि नारी ना होती तो यह समस्त संसार शमशान तुल्य होता। पति के लिए चरित्र, सन्तान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया, जीव मात्र के लिये करूणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है और नारी का अपमान पराशान्ति का अपमान है। जिससे मानव का पतन होता है। अत: उसे स्नेह व सम्मान दें।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।''

अर्थात जहां नारी का सम्मान होता है वहां पर देवता रमण करते हैं। जहां नारी का अपमान होता है वहां पर समस्त कार्य अकारथ हो जाते है।

प्राचीन काल में स्त्रियां बहुत विदुषी होती थी। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, रामायण काल में सीता, महाभारत काल में द्रौपदी, गांधारी एंव शंकुतला अत्यन्त विदुषी देवियाँ थी। जो कि हर प्रकार की शिक्षा दीक्षा में पारंगत थी।

गृहस्थ का आधार भी सन्नारी, सद्गृहिणी, वत्सला माता, स्नेहिल बहिन तथा प्रेम मे पगी पत्नी होती है। यही कारण है कि नारी की महिमा उसके गौरव तथा उसके महत्व का निरूपक करने में मनु ने अपनी कलम का चमत्कार दिखाया है। नारी की महिमा के निरूपक जो श्लोक मनु ने बताये है निम्न हैं:- सन्तुष्टो, भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च, स्त्रियां तु रोचमानंय, पूजिता भूषधितव्या, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, शोचन्ति जामयोयत्र, तस्मादेता, सदा पूज्या तथा पूजनार्थ महाभाग: पूजा ही गृहदीप्त्ये: आदि।

भारत की देवियों और विदूषियों का इतिहास बेमिसाल रहा है। उन महान महान नारियों के गौरव की गाथा गाता है। भारत की नारी को फिर से अपने उसी स्वरूप को पहचानना होगा। देश की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने के लिये से लक्ष्मीबाई, रानी पद्मनी, झलकारी, रानी दुर्गावती जैसी वो वीरांगनाओं की भांति अपना जौहर दिखाना होगा जो कि सिंहनी की भांति आगे बढ़ती ही रही। अत्याचारियों से डर कर पीछे नहीं हटी।

किसी गीतकार ने कहा है:-

''ए मातृशाक्ति जाग तू होश अब संभाल। जागेगें भाग्य देश के होंगे सभी निहाल।।''

आज नारी कामयाबी की ओर अग्रसर है। अब उसकी दुनिया पूर्ववत नहीं रही। उसके सपनों को जैसे पंख मिल गये हैं। भारतीय नारी का यह सफर अनवरत जारी रहेगा।

- कु. वैशाली आर्या
मकान ६/१४३३
जवाहर पार्क,
बेहर रोड, सहारतपुर (उ. प्र.)

विचार शक्ति का चमत्कार

(इच्छा एवं प्रवृत्ति के बीच की अवस्था)

प्रिय पाठको,

जीवात्मा की हमेशा यही इच्छा रहती है कि वह सुख और सकारात्मकता की ओर अग्रसर हो। उसकी प्रवृत्ति हमेशा नीचे की ओर जाने की रहती है। हमारा हमेशा यही प्रयास रहना चाहिए कि इस प्रवृत्ति को रोककर उर्ध्वगामि बने। इसी बीच की अवस्था को निर्विचार या निर्विषय की अवस्था कहते हैं या दूसरे शब्दों में ध्यान की अवस्था भी कहते है। जैसे ही अंत:करण में विचार स्थिर होते हैं सुख व आनन्द की अनुभूति होने लगती है। तथा आनन्द का स्त्रोत्र फूटने लगता है। हमारा अहम तत्व बुद्धि व विचारो द्वारा शक्तियों का संचालन करता रहता है। अब यह हमारे अहम की शक्तियों के गुणो पर निर्भर करता है कि हमारे विचार अच्छाईयों की प्रति अग्रसर होते हैं या बुराईयों के प्रति। अपने आप सी उपेक्षा कर हम कर्म नहीं कर सकते। पूर्ण स्वीकार की भावना के साथ विचारों को पूर्ण बनाना है ताकि फल भी हमें पूर्ण ही मिले। विचारों में विरोधाभास के रहते हुए हमारे विचार शक्तिहीन हो जाते है। नतीजन हमारे विचार यर्थात में परिवर्तित होते नजर नहीं आते। फल प्राप्ति के प्रति अपनी योग्यता को मन से स्वीकार करना होगा। उसका अहसास होना पड़ेगा। तभी जीवन की रुकावटे एवं कष्टो को भेद सकते है। दूसरों के प्रति अच्छे विचार हमारे लहू में अमृत घोलने का कार्य करते हैं।

राजकुमार भगवती प्रसाद गुप्त
मंत्री, आर्य समाज, वाशी.

भारत पुत्र जग में गूंजेगा, गौरव गान तुम्हारा निज प्राणों को आहुत करके मां को दिया सहारा। तन-मन-धन सर्वस्व भेंट कर तुमने देश जगाया। धन्य धन्य है जननी जिसने भगत सिंह सा जाया स्वतंत्रता के लिये स्वीकारी हंस कर तुमने फांसी पाकर तुम सा अमर सेनानी, हर्षित रानी झांसी

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा धर्म का मूल स्वरूप

वैदिक धर्म व प्रचलित सनातन धर्म की मूल मान्यता (समीक्षा)

पं. उम्मेद सिंह विशारद
मो. ९४११५१२०१९

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ही एक मात्र ऐसे विचारक महाभारत काल के बाद हुए हैं, उन्होंने धर्म का सत्य स्वरूप संसार के सामने प्रस्तुत किया उन्होंने वैदिक धर्म के अनुसार सिद्ध किया कि जिस धर्म मत में निम्न पांच मान्यताऐं पूर्ण रुप से समावेश हैं वहीं ईश्वरीय धर्म मानव कल्याण हेतु सत्य धर्म है और जिसमें एक गुण का भी अभाव है वह पूरक धर्म नहीं कहा जा सकता है।

मूल पांच मान्यताएं निम्न है

१. अहिंसा २. न्याय ३. दया ४. सत्य ५. ईश्वर भक्ति

ये सब धर्म के पयार्य है यदि इनमें से एक गुण भी निकाल दिया जाये तो वह धर्म नहीं रह जाता। यह धर्म का वास्तविक स्वरूप हैं। जिन धर्म सम्प्रदायों में उक्त एक गुण का भी अभाव है तो वह किसी सूरत में धर्म संगठन नहीं है। आजकल जितने भी सम्प्रदाय धरती पर प्रचिलित है, उनमें एक वैदिक धर्म छोड़ कर सभी में कोई न कोई कमी है। कारण कोई हिसंक तो कोई असत्य का आश्रित कोई ईश्वर भक्ति वंचित है। धर्म का स्वरुप महान है उसका काई आर-पार नहीं। धर्म तो केवल वैदिक धर्म ही है जो मानव मात्र का बिना पक्षपात के कल्याण करता है। आइए विचार करते है।

१-अहिंसा

अनागोहत्या वै भीमा- (अर्थव) निरपराध की हत्या बड़ी भयंकर सजा देने वाली है क्योंकि संसार में सभी प्राणीयों की रचना ईश्वर ने की है, इसलिए सब प्राणी ईश्वर के पुत्र हुए। पशु भी ईश्वर की रचना है। अत: पशु हत्या करके देवी देवताओं की पूजा से ईश्वर रुष्ट होते हैं और हत्या करने वाले को भयंकर दन्ड देते हैं। देवताओं को खुश करने व अपना भला चाहने वाले जो देवताओं की पत्थर की मूर्ति के समाने पशु हत्या करते हैं उससे उनके संस्कार भी हिंसक बन जाते हैं। यही कारण है आज मानव जगत में चारों ओर हिंसा की प्रवृति वेगवती हो रही है।

समीक्षा

वैदिक धर्म पूर्ण रुप से अहिसंक है क्योंकि वेदों में केवल जगह-जगह अहिंसा का उपदेश दिया गया है। अन्य धर्म मत जो अहिंसा का समर्थन करते हैं उनको साधूवाद है किन्तु न्याय, दया, सत्य, और सत्य ईश्वर भक्ति के अभाव में बहुमत पूर्ण धार्मिक नहीं कहा जा सकता है।

केवल वैदिक धर्म (आर्यसमाज) में ही उक्त पाचों गुणों का समावेश है इसलिए सर्व श्रेष्ट वैदिक धर्म है।

२- न्याय

नियते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्विरनेन इति न्याय= (न्यायदर्शन) अर्थात= जिसके द्वारा किसी प्रतिपाद्य विषय को सिद्धि की जा सके जिसकी सहायता से किसी निश्चित सिद्धान्त पर पहुंचा जा सके उस का नाम न्याय है।

न्याय दर्शन को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. सामान्य ज्ञान की समस्या को हल करना २. जगत की पहेली को सुलझाना ३. जीवात्मा तथा मुक्ति ४. परमात्मा और उसका ज्ञान।

ज्ञान दो प्रकार का होता है एक आर्ष ज्ञान और दूसरा अनार्ष

आर्ष ज्ञान की परिभाषा- ईश्वरीय व्यवस्थानुसार, वेदानुसार, सृष्टिक्रमानुसार, विज्ञान के अनुसार, और जैसी मेरी आत्मा, मन नहीं केवल आत्मा दूसरों से अपने लिये व्यवहार चाहती है वैसा ही दूसरों के साथ करना, और धर्म का सत्य स्वरुप, कर्म का सत्य स्वरुप, पत्येक आध्यात्म सत्य मान्यताऐं राजनीतिक सत्य मान्यताएं सामाजिक सत्य मान्यताएं आदि-आदि आर्ष ज्ञान कहलाता है।

अर्नाष ज्ञान की परिभाषा- निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी ईश्वर को मनुष्यों की काल्पनिक, मूर्तियों में सृष्टिकम के विरुद्ध बातों को मानना- जड़ की पूजा का अन्ध विश्वास काल्पनिक विज्ञान व सृष्टि क्रम के विरुद्ध धार्मिक ग्रन्थों की रचना, काल्पिनक देवी देवताओं के आगे अपने स्वार्थ के लिये पशु हत्या करना। अनेक जादू टोना भूत प्रेत, फलित ज्योतिष शास्त्रों की रचना आदि अनार्ष ज्ञान है। न्याय और अन्याय को भेदन समझ कर अन्याय का समर्थन करना आदि।

समीक्षा

वैदिक धर्म सत्य न्याय का पक्षधर है, सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में कहीं पर भी अन्याय की शिक्षा नहीं दी गयी है। किन्तु अन्य धर्म सम्प्रदायों में न्याय को स्वार्थ की नजरों से किया गया है। इसलिये वह पूर्ण धर्म नहीं कहा जा सकता है। केवल वैदिक धर्म में उक्त पांचो गुणों का समावेश है इसलिए सर्व श्रेष्ट वैदिक धर्म है।

३-दया

महर्षि दयानन्द जी द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश के सातवें सम्मुलास से प्रश्न- परमेश्वर दयालु व न्याय कारी है व नहीं? उत्तर- है- प्रश्न= ये दोनों गुण परस्पर विरूद्ध है। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाए, क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कर्ता के कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख, दु:ख पहुंचाना, और दया उसको कहते हैं जो अपराधों को बिना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तर= न्याय और दया नाम मात्र का ही भेद है। दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर दया, और उस डाकू को मार सकने से अन्य सहसों मनुष्य पर दया प्रकाशित होती हैं।

समीक्षा

वैदिक धर्म के अतिरिक्त वर्तमान में प्रचलित धार्मिक व सामाजिक व राजनैतिक संगठनों में निजि स्वार्थ की भावना चरम सीमा पर है। इसीलीए व्यहारिक जगत में परोपकार श्रद्धा परहित के संस्कार दिनों दिन न्यून होते जा रहे हैं। अधिकांस समुदाय दया का मूल उपदेश्य न समझ कर अन्धविश्वास

www.thearyasamaj.org

व रुढ़ी परम्पराओं की गति में ही वृद्धि कर रहें हैं। आज दया शब्द के सही मायनों को समझने की अति आवश्यकता है।

३- सत्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश की तृतीय सम्मुलास में कहा है कि जो जो गुण कर्म स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो वह-वह ''सत्य'' और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरा जो जो सृष्टिक्रम के अनुकूल है वह सत्य और जो जो विरुद्ध है वह सब असत्य है। तीसरा-आप्त अर्थात जो धार्मिक, विद्वान सत्यावादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह सत्य और जो जो विरुद्ध है व असत्य है। चौथी अपनी आत्म की पवित्रता विद्या के अनुकूल सुख अप्रिय, दु:ख प्रिय है वैसे सर्वत्र समझा लेना। पांचवी आत्म आठप्रमाणों अर्थात प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य अर्थापत स्वभाव और अभाव है। यह सत्य की कसोटिया है।

समीक्षा

उपर्युक्त सत्य की कसोटियों के आधार पर केवल वैदिक धर्म व आर्य समाज ही सही उतरता है। बाकी अन्य धार्मिक संगठनों में किसी न किसी रूप में मान्यताऐं असत्य पर आधारित होती है और उनका नेतृत्व पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर उन्हीं असत्य या रुढ़ी मान्यताओं को ही प्रचलित करते हैं जिससे मानव समाज में अति धार्मिक अन्धविश्वास फैलता जाता है।

५- ईश्वर मान्यता तथा भक्ति

ईश्वर की परिभाषा- ईश्वर सचिदानन्द स्वरुप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्या, पवित्र, और सृष्टि कर्ता है। (आर्यसमाज का दूसरा नियम) स हि सर्ववित सर्वकर्ता- (सांख्य दर्शन) वह परमात्मा सर्वान्तयामी और सब जगत का करता है।

नोट- वेदों में उपनिषिदों में, दर्शनों में व अन्य आर्ष ग्रन्थों में बताया गया है एक निरांकार ईश्वर और उसी की भाक्ति करनी चाहिए।

समीक्षा

महाभारत काल के बाद सबसे विवादित ईश्वर का विषय रहा है। ईश्वर का सत्य ज्ञान न होने के कारण सम्पूर्ण विश्व में आपस में लड़ाई झगड़ा मारकाट, सामाजिक शोषण, ईश्वर के नाम से साधारण मनुष्यों को भ्रमित करके अपनी-अपनी दुकानदारियां करना रहा है, और आज ईश्वर के नाम से पाखण्ड चरम सीमा पर पहुंच गया है। कोई भी सत्य को समझने को तैयार नहीं है, अपितु अपने पूर्वाग्रहों से अपनी अपनी असत्य मरने मारने को तैयार है। अत: धर्म के अतिरिक्त प्रचलित धर्म मतों में अंहिसा, न्याय, दया, सत्य, और ईश्वर भक्ति के इन गुणों में से कोई कभी होने के कारण पूर्ण धार्मिक संगठन नहीं माना जा सकता है। महर्षि दयानन्द सर स्वती जी द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों व आर्य समाज को एक न एक दिन संसार को मानना ही पड़ेगा।

वैदिक प्रचारक गढ़निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड
मो. : ९४११५१२०१९

युग नायक महर्षि दयानन्द सरस्वती

युगनायक ऋषि दयानन्द की, शिक्षाओं को मानो।
करो वेदप्रचार जगत में, भारत के विद्वानों ॥

जगत गुरु ऋषि दयानन्द थे, ईश्वर भक्त निराले।
वेदो के विद्वान धुरन्धर देशभक्त मतवाले ॥
बालब्रह्मचारी तपधारी, संत अजब थे त्यागी।
शीलवन्त गुणवान दयामय थे अद्भुत वैरागी ॥

जीव मात्र के हित चिंतक को ठीक तरह तुम जानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्धानो ॥१॥

वेदज्ञान को भूल गई थी, बिलकुल दुनियाँ सारी।
अधंकार में भटक रहें थे, दुनियाँ के नर-नारी ॥
चेतन की पूजा तज दी थी, जडपूजा की जारी।
लाखों गऊऐं रोजाना, जग में जाती थी मारी ॥

पढो सभी इतिहास पुराना, गलत ठान मत ठानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्वानो ॥२॥

देव पुरुष ने कृपा की थी, सारे जग पर भारी।
कर्म प्रधान बताया ऋषि ने, समझाए नर-नारी ॥
दुर्गुन त्यागो सद्गुन धारो, बनकर परोपकारी।
छुआछातकी, ऊँच-नीच की, दूर करो बीमारी ॥

ऋषि ने गौ को मात बताया, ऋषि की शिक्षा मानो।
करो वेद प्रचार जगत में भारत के विद्वानो ॥३॥

भारत था परतंत्र जुलम करते थे गोरे भारी।
उनके जुलमों से आतंकित, थी तब जनता सारी ॥
स्वामी जी ने आजादी का, अनुपम पाठ पढाया।
अग्रेजों को मार भगाओं वैदिक मार्ग बताया ॥

धीर-वीर निर्भीक गुरु की, महानता पहचानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्वानो ॥४॥

याद रखो यदि देव दयानन्द अमर न जग में आते।
ऋषियो कें वंशज दुनियां में ढूंढे से ना पाते ॥
राम कृष्ण के भक्त आर्य जन, दर दर धक्के खाते।
वेद शास्त्र रामायण गीता, के पाठक मिट जाते ॥
''नन्दलाल'' ऋषि दयानंद के गुण गाओ मर्दानों।
करो वेद प्रचार जगत में भारत के विद्वानो ॥५॥

पं. नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य भजनोपदेशक
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)
चल भाष क्रमांक- ०९८१३८४५७७४

www.thearyasamaj.org

१. आइए, वेदाध्ययन का व्रत लें

आचार्य रामनाथ वेढ़ालंकार

प्राचीन परम्परा में वेदाध्ययन द्विजमात्र का पवित्र कर्त्तव्य माना जाता था। मनु ने कहा है कि जो द्विज वेद नहीं पढ़ता वह इसी जन्म में शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है। पतञ्जलि कहते हैं कि ब्राह्मण को चाहिए कि वह निष्कारण ही अर्थात् बिना किसी लाभ की आशा से छहों अंगों से युक्त वेद का अध्ययन करे और उसका ज्ञान प्राप्त करे। तो आइये 'वेद क्यों?' इसका उत्तर खोजने का यत्न करें।

साहित्यिक दृष्टि

वेदों की गणना उच्चकोटि के साहित्य में की जाती है। वेद के ही शब्दों में वेद एक ऐसा काव्य है जो न कभी मरता है, न कभी पुराना होता है- **देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति** (अथर्व १०.८.३२)। जो काव्य में उत्कर्षाधायक तत्त्व अभिधा, लक्षण, व्यंजना, शब्दालंकार, अर्थालंकार आदि माने जाते हैं वे सब वेद काव्य में उत्कृष्ट रूप में विद्यमान हैं। वेद के शब्दों में विविध अर्थों को देने की जैसी शक्ति उपस्थित है, वैसी संसार की अन्य किसी भी भाषा में नहीं है। वेद के अनेक मन्त्र जिस प्रकार अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ, अधिराष्ट्र आदि विविध अर्थों को देने की क्षमता रखते हैं, वैसी क्षमता किसी अन्य भाषा के साहित्य में नहीं है। वेदों के मन्त्र कवि रवीन्द्र की गीताञ्जलि के गीतों से अधिक भावपूर्ण हैं। यदि हम कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, हर्ष, बाणभट्ट आदि संस्कृत कवियों के साहित्य को पढ़ने में गौरव अनुभव कर सकते हैं, तो वेद का साहित्य तो उससे भी अधिक प्रांजल है। यदि हम ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी, फारसी, फ्रेंच, रशियन, जर्मन, तमिल, मराठी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी आदि साहित्य को पढ़ते समय यह प्रश्न नहीं उठाते कि इस साहित्य को क्यों पढ़ें तो वैदिक साहित्य के लिए ही प्रश्नचिह्न क्यों? साहित्य का अध्ययन स्वान्त: सुखाय होता है, वह स्वान्त:सुख वैदिक साहित्य के मर्म में प्रवेश करनेवाले साहित्याराधक को कहीं अधिक प्राप्त हो सकता है।

सांस्कृतिक दृष्टि

वैदिक संस्कृति संसार भर की संस्कृतियों में एक विशिष्ट संस्कृति है। वर्णाश्रमव्यवस्था, यज्ञ, दान, अतिथि-सत्कार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, अनिवार्य शिक्षा, आतुरों की सेवा, ईश्वरपूजा, सौहार्दभावना, स्वराज्य, समृद्धि, अग्रगामिता, पाशविक शक्तियों पर विजय आदि इस संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। वैदिक संस्कृति का उपासक जिस स्तर पर खड़ा है, उससे और ऊँचा उठना चाहता है। उसकी यह अभीप्सा होती है कि पृथिवी से उठकर मैं अन्तरिक्ष में पहुँच जाऊँ, अन्तरिक्ष से उठकर द्युलोक में पहुँच जाऊँ, द्युलोक से उठकर स्वर्लोक में बहुँच जाऊँ। इस संस्कृति पर हम ही नहीं, सारा विश्व मुग्ध है। वैदिक संस्कृति का अध्ययन करने के लिए ही जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों के विद्वानों ने भी वेदों का अध्यन किया है और इतना परिश्रम किया है कि हमारा परिश्रम उसके आगे हार मानता है, यद्यपि यह दूसरी बात है कि वे कई ऐसे परिणामों पर पहुँचे हैं, जिनसे वेदाध्ययन की भारतीय विचारधारा सहमत नहीं हो सकती। जो संस्कृति इतनी महत्त्वपूर्ण है उसका प्रामाणिक ज्ञान हम वेदों को पढ़कर ही कर सकते हैं। गम्भीर और सही पद्धति से वेदों का अध्ययन न होने के कारण पाश्चात्त्यों ने वैदिक संस्कृति के सम्बन्ध में जो कई एक अनर्थमूलक कल्पनाएँ कर डाली है, उनकी परीक्षा भी हम वेदों का गहन अध्ययन करके ही कर सकते हैं।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि

भाषाविज्ञान पाश्चात्त्य देशों में नवीन विज्ञान के नाम से उदित हुआ है, जिसे आरम्भ हुए लगभग डेढ़ सौ वर्ष ही हो पाये हैं, यद्यपि भारतीय अलंकारशास्त्री और वैयाकरण विद्वान् पहले ही इसके अनेक अंगों पर पर्याप्त अनुसन्धान कर चुके थे। यह भाषाविज्ञान ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी, वैदिक एवं लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, भारत की प्रान्तीय भाषाओं आदि के तुलनात्मक अध्ययन से विकसित हुआ है और आज भी यह विकासोन्मुख ही है, क्योंकि इसके सिद्धान्त अभी अन्तिम रूप से मान्य नहीं कहे जा सकते। इस भाषाविज्ञान के विकास में वैदिक भाषा के अध्ययन ने विशेष योगदान दिया है और आगे भी दे सकता है। आज भाषाविज्ञान में भारोपीय भाषा-परिवार सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवार माना जाता है, जिसका उद्गम किन्हीं अंशों में वैदिक भाषा ही मानी जा सकती है। आज का भाषाविज्ञानी इस भारोपीय भाषा-परिवार से भिन्न परिवारों को सर्वथा स्वतन्त्र मानता है और उनका वैदिक भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं स्वीकार करता, किन्तु वैदिक भाषा के अधिकाधिक तुलनात्मक अध्ययन से भविष्य में सम्भव है हम इस परिणाम पर भी पहुँच सकें कि सभी भाषा-परिवार किसी सीमा तक वैदिक भाषा के ऋणी हैं। तब भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वेद और भी अधिक महत्त्व की वस्तु बन जाएँगे। एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी वेदों का एवं वैदिक भाषा का अध्ययन स्वागतयोग्य है।

धार्मिक दृष्टी

भारतीय धर्मशास्त्र में वेदों का सबसे अधिक महत्त्व माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार धर्म-अधर्म का संशय उपस्थित होने पर उसका निर्णय तीन वेदज्ञों की एक परिषद् करती है, जिसमें एक ऋग्वेद का ज्ञाता, दूसरा यजुर्वेद का ज्ञाता तथा तीसरा सामवेद का ज्ञाता होता है (मनु. १२.११२) मनु का यह भी कथन है कि वेदज्ञ विद्वान् अकेला भी जिसे धर्म घोषित कर दे उसे धर्म जानना चाहिए, अज्ञ लोग दस हजार भी क्यों न हों न हों, उनसे कही गई बात धर्म नहीं मानी जा सकती। (मनु० १२.११३) यदि वेद और स्मृति आदि में कहीं परस्पर विरोध हो तो उस दशा में वेद की बात ही प्रामाणिक मानी जाएगी, यह सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है। उदाहरणार्थ, यदि किसी स्मृति में स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से वञ्चित किया गया है, तो उस स्मृति की यह बात वेदविरूद्ध होने से मान्य नहीं है। इसी प्रकार यदि किसी धर्मग्रन्थ में यज्ञों में पशुबलि देने का विधान है, तो यह भी वेदविरूद्ध होने से त्याज्य ठहरेगा। मध्यकाल में वेदों के नाम पर अनेक वेदविरुद्ध बाते बालविवाह, छुआछूत, मूर्तिपूजा, अनेकेश्वरवाद, जन्ममूलक वर्णव्यवस्था, मृतक-श्राद्ध आदि प्रचलित हो गयी थीं, स्वामी

www.thearyasamaj.org

दयानन्द के समय भी चल रही थी और कुछ आज भी चल रही हैं। स्वामी दयानन्द इन वेदविरुद्ध कुप्रथाओं का खण्डन अपने अगाध वेद-पाण्डित्य के बल पर ही कर सके। आज भी विपक्षियों की ओर से लेख लिखे जाते हैं कि गोहत्या और गोमांस-भक्षण वेदानुमोदित है, वेदों में नारी की घृणित स्थिति है, सतीप्रथा वेद से ही आयी है, धार्मिक असहिष्णुता वेदों की ही देन है आदि। वेदों पर थोपी जानेवाली इस प्रकार की वेदविरुद्ध बातों का खण्डन हम तभी कर सकेंगे, जब हमारा वेदों का गम्भीर अध्ययन होगा।

धार्मिक दृष्टि से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध करने के लिए भी वेदाध्ययन की आवश्यकता है। क्या धर्म है और क्या अधर्म है, यह वेद ही बतलाता है। पर वेद उसे ही बतला सकता है, जो वेदज्ञ है। अल्पश्रुत व्यक्ति वेद से धर्माधर्म का बोध प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए उक्ति प्रसिद्ध है कि अल्पश्रुत व्यक्ति से वेद भय खाता है कि यह तो उल्टा मुझ पर ही प्रहार कर देगा- **बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहारिष्यति।** यही सब ध्यान में रखकर आर्यसमाज के नियमों में यह सम्मिलित किया गया है कि ''वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।''

अनुसन्धानात्मक दृष्टि

वैदिक भाषा और वैदिक साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है, यह हम अभी ऊपर कह चुके हैं। भारत के प्राचीन मनीषियों ने वेदों पर बहुत कुछ अनुसन्धान किया था। प्रातिशाख्यकारों ने एवं आचार्य पाणिनि आदि वैयाकरणों ने वैदिक भाषा का सूक्ष्म अध्ययन करके तत्सम्बन्धी नियमों का आविष्कार किया था। याज्ञवल्क्य आदि ब्राह्मणग्रन्थकारों एवं श्रौतसूत्रकारों ने वेदों के आधार पर याज्ञिक कर्मकाण्ड तैयार किया था। गृह्यसूत्रकारों ने वेदों के आधार पर जातकर्म, नामकरण आदि संस्कारों की सृष्टि की थी। अनुक्रमणीकारों ने वेदमन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्दों का पर्यवेक्षण किया था। वेदों के ही आधार पर आरण्यकग्रन्थों एवं उपनिषदों की रचना हुई थी। ब्राह्मणग्रन्थकारों एवं नैरुक्तों ने वेदार्थ का अनुसन्धान किया था। कतिपथ वेद-भाष्याकार भी इसमें सहायक हुए थे। महर्षि दयानन्द ने इस वेदानुसन्धान को और आगे बढ़ाया। वेदविरुद्ध प्रचलित मिथ्या धारणाओं को बलपूर्वक झकझोरा और सत्य वेदार्थ को प्रकाशित किया, वेदार्थ के सम्बन्ध में अनेक नवीन दिशाओं को प्रशस्त किया। आज भी वेद प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वैदिक भाषा पर, वेदार्थ पर और वैदिक मान्यताओं एवं सिद्धान्तों पर सही दिशा में अनुसन्धान हो। वेदों के अनेक सूक्त रहस्यों से भरे हुए हैं, उन रहस्यों का उद्घाटन आज भी अपेक्षित है। वैदिक भाषा पर प्रातिशाख्यों, पाणिनिक के वैदिक व्याकरण और मैकडानल की 'वैदिक ग्रामर' के होते हुए भी आज भी अनुसन्धान की आवश्यकता है। हम वेदानुसन्धान की दिा को पाश्चात्य विचारधारा के चाकचक्य से मुक्त करके उनकी अच्छाइयों को ग्रहण करते हुए एक नया मोड़ दे सकते हैं और वह नया मोड़ होगा दयानन्द प्रदर्शिद वैदिक मान्यताओं के प्रकाश में।

आर्थिक दृष्टि

छात्रों की दृष्टि से वेदाध्ययन के आर्थिक पक्ष पर भी विचार कर लेना उचित होगा, क्योंकि आज का युग अर्थ का युग है और इसमें वही विद्या प्रशस्त मानी जाती है जो अर्थकरी हो। प्रश्न यह है कि वेद के छात्र क्या आर्थिक दृष्टि से सफल हुए हैं या हो सकते हैं? हमारा कहना है कि वे वैसे ही सफल हुए हैं और हो सकते हैं, जैसे संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विषयों को पढ़नेवाले छात्र होते हैं। वर्तमान काल में भारत में वेदाध्ययन के तीन प्रकार के केन्द्र हैं। प्रथम आर्यसमाज द्वारा चलाये जानेवाले गुरुकुल हैं, जिनमें स्नातक-स्तर तक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, दर्शनशास्त्र आदि विषयों के साथ अनिवार्यत: वेद भी पढ़ाया जाता है और स्नातकोत्तर कक्षाओं में छात्र स्वतन्त्र रूप से वैदिक साहित्य की ही स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के लिए अथवा संस्कृत के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वेद पढ़ते हैं और पी-एच. डी. की उपाधि हेतु वैदिक विषयों पर शोध करते हैं। दूसरे वेदाध्ययन के केन्द्र हैं विविध विश्वविद्यालयों के संस्कृत-विभाग, जहाँ एम.ए. में एक पत्र तो अनिवार्य रूप से वेद का पढ़ाया ही जाता है, उसके अतिरिक्त छात्र अपनी रुचि के अनुसर कई वैकल्पिक समूहों में से वेद का समूह भी चुन सकते हैं, जिसमें वैदिक साहित्य के दो या तीन पत्र होते हैं। तीसरे वेदाध्ययन के केन्द्र हैं संस्कृत- विश्वविद्यालय तथा उनके अधीन चलनेवाले संस्कृत -महाविद्यालय। इनमें शास्त्री परीक्षा तक अन्य विषयों के साथ वेद भी पढ़ाया जाता है और साहित्यशास्त्री, व्याकरणशास्त्री आदि के समान वेदशास्त्री भी एक स्वतन्त्र परीक्षा होती है, जिसमें मुख्यत: वेद का ही पाठ्यक्रम रहता है। आगे आचार्य परीक्षा में भी साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य आदि के समान वेदाचार्य की भी पृथक् स्वतन्त्र परीक्षा होती है, जिसमें सब पत्र वेद के ही होते हैं। वेदाचार्य परीक्षा के पश्चात् वैदिक शोध का भी प्रावधान रहता है। अनुभव में आया है कि इन तीनों ही केन्द्रों से पढ़े हुए वेद के स्नातक अर्थोपार्जन की दृष्टि से अन्य विषय पढ़े हुए स्नातकों से पीछे नहीं हैं। वे उक्त तीनों प्रकार के केन्द्रों में ही वेद के अध्यापक, प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष आदि पदों पर नियुक्ति पा लेते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न वेदानुसन्धानपीठों में या सरकारी सेवाओं में भी वे स्थान पा सकते हैं। जिनकी रुचि हो वे वेदोपदेशक भी बन सकते हैं।

यह तो है छात्रों की बात। पर केवल छात्रों को ही नहीं, अपितु बालक, युवक, वृद्ध, नर-नारी सभी को चाहिए कि प्रतिदिन वैदिक स्वाध्याय करें, और वेद में जो कर्त्तव्य-प्रेरणाएँ की गयी हैं, जो उद्बोधन दिया गया है, जिस ओजस्विता, आशावाद, आत्म-विश्वास एवं अग्रगामिता का सन्देश दिया गया है उससे अनुप्राणित होकर जीवन में सदा अग्रगामी बने रहें। प्राचीनकाल में श्रावण पूर्णिमा को वेदाध्ययन का सत्र प्रारम्भ होता था और सम्मिलित वेदपाठ की ध्वनि से दिशाएँ मुखरित हो जाती थी, साथ ही वेदार्थ का अनुसन्धान भी होता था। ऋग्वेद के मण्डूक-सूक्त में वर्षा ऋतु में मेंढकों के संगीत की उपमा व्रतचारी ब्राह्मण बटुओं के सस्वर वेदपाठ से दी गयी है। इसी का अनुकरण करते हुए कवि तुलसी ने भी कहा है- **'दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई, वेद पढ़त जनु बटु समुदाई'।** आइए, हम सब मिलकर वेदाध्ययन का व्रत धारण करें।

www.thearyasamaj.org

विश्वास की परीक्षा

शकुन्तला आर्या

अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद व उनके गर्म दल के अन्य क्रांतिकारियों के बीच आगरा में एक गुप्त बैठक चल रही थी। आजाद अपने साथियों को बता रहे थे कि गिरफ्तार किये गये क्रांतिकारी से अंग्रेज बहुत ही अमानवीय व पीड़ादायक ढंग से व्यवहार करते है। यातनाएं इस कदर देते है कि कठोर-से-कठोर आदमी भी सब उगल दे।

आजाद की बात सुनकर राजगुरू को लगा कि उनका आत्मविश्वास डिगने लगा है। और वे अपने साथियों के लिये चाय बनाने के लिये दूसरे कमरे में चले गये जहां पर अंगीठी जल रही थी। चाय बनाते समय राजगुरू ने धधकती आग में संडासी डाल दी। जब संडासी लाल हो गई तो फौरन अपने सीने से लगा डाली। खाल जलने लगी पर उन्होंने उफ तक नहीं की और अपना सीना सात बारा छेद डाला। जब काफी दर तक राजगुरु चाय लेकर नहीं आये तो चंद्रशेखर और उनके साथी, जहां राजगुरू बैठे थे वहीं आ गये। कमरे का दृश्य देखकर आजाद स्तब्ध खड़े रह गये। 'हाय रे! ये तूने क्या कर डाला?' यह कहते हुए आजाद व उनके साथी रोने लगे। आजाद ने राजगुरू को अपनी छाती से लगाया। 'मुझे तुम पर गर्व है राजगुरू!' आजाद ने कहा। ऐसे थे अमर शहीत क्रांतिकारी राजगुरू।

शूरवीरों की मौत

अठ्ठारह साल की जवानी की दहलीज पर कदम रखने वाली आयु में सभी सुनहरे भविष्य के सपनों में लीन रहते हैं; लेकिन सच्चे देश प्रेम की बलिवेदी पर प्राण न्यौछावर करने की होड़ में उम्र शूरवीरों के आड़े कभी नहीं आई। खुदीराम बोस ने इस छोटी-सी उम्र में मुजफ्फरपुर की जेल में फांसी का फंदा हंसते-हंसते चूम लिया था। बंगाल में जन्मे खुदीराम बोस पर किंग फोर्ड की हत्या के अपराध में मुकदमा चला और फांसी की सजा हुई। बोस बड़े हंसमुख स्वभाव के थे कहते है कि फांसी पर चढ़ाए जाने के एक दिन पहले जेलर ने उन्हें खाने के लिये स्वादिष्ट आम दिया। बोस ने आम तो खा लिया, मगर उन्हें एक मज़ाक सूझा। जाहिर है, उनके दिमाग में मृत्यु का जरा भी खौफ नही रहा होगा।

खुदीराम बोस ने आम को इस तरह चूसा कि बाहर से वह पूरा और सही सलामत दिखाई दे। इस तरह उन्होंने भीतर से खोखला आम प्लेट में रख दिया। शाम को जेलर ने पूछा- 'कैसा लगा आम तुम्हें खुदीराम?'' खुदीराम ने लेटे हुए ही जबाब दिया, 'जेलर साहब अकेले-अकेले, मेरी आम खाने की इच्छा नहीं हुई। अब आप आए हैं तो आप ही खिला दीजिए।'

बोस की बात सुनकर जेलर ने आम उठाने के लिये हाथ बढ़ाया। आम उसके हाथ में आते ही पिचक पड़ा। जेलर खिसिया गया और बोस खिलखिलाकर हंस पड़े। वह एक ऐसी सरल हंसी थी जिसका शायद ही कोई वर्णन कर सके। कुछ क्षण तक जेलर भी ठगा-सा उन्हें इस तरह हंसता देखता रहा। भीतर ही भीतर वह हैरान था कि यह बालक जाने किस मिट्टी का बना है। कल इसे फांसी पर चढ़ना है और आज इसे ऐसा मज़ाक सूझ रहा है। फांसी वाले दिन जेलर ने देखा कि खुदीराम बोल के चेहरे पर भय की एक भी रेखा न थी, सिर्फ बीती शाम की हास्य-रेखाएं अब देश के लिये जान कुर्बान करने के भाव से जन्मी सख्त रेखाओं में रूपांतरित हो गई थीं।

खुदीराम बोस हाथ में गीता लिये वंदे मातरम गाता हुआ फांसी का झूल झूल गया।

ईमानदारी

चन्द्रशेखर की आर्थिक हालत खस्ता थी। उन्हें कभी-कभी बिना खान खाए ही सोना पड़ता था। एक दिन उनके पास बस एक इकन्नी थी। उन्हें बहुत भूख लगी थी। उन्होंने सोचा कि इस इकन्नी के चने खरीदकर खाए जाएं उन्होंने इकन्नी के चने खरीदे और घर आकर खाने लगे, तभी उन्हें चने की पुड़िया में एक चवन्नी दिखाई दी। उनके एक मन ने कहा रख लो, कई दिनों के खाने का इंतजाम हो गया समझो। लेकिन दूसरे मन ने कहा यह ठीक नहीं होगा और वह उस चवन्नी को लेकर भड़भूंजे की दूकान पर पहुंचे आर बोले-'क्यों भैया, आपके यहां इकन्नी के चने खरीदने पर साथ में चवन्नी भी दी जाती है क्या? पैसे ऐसे लुटाते रहोगे तो कमाओगे कैसे?' कहकर उन्होंने चवन्नी भड़भूंजे को लोटा दी। उस भड़भूजे से आजाद अक्सर चने खरीदते थे, सो वह जानता था कि उनकी माली हालत क्या है। फाकों में भी सतनी इमानदारी से पेश आए आज़ाद के सम्मुख वह नतमस्तक हो गया।

नि:स्वार्थ सेवा

एक बार भगत सिंह ने बातचीत के क्रम में चंद्रशेखर आजाद से कहा, 'पंडित जी हम क्रांतिकारियों के जीवन-मरण का कोई भरोसा नहीं हैं। अत: आप अपने घर का पता बता दें, ताकि खुदा न खास्ता अगर आपको कुछ हो गया तो आपके परिवार की कुछ सहायता की जा सके।

उन्होंने खीझते हुए कहा, 'पार्टी का कार्यकर्त्ता मैं हू। मेरा परिवार नहीं, अत: उनसे तुम्हें क्या मतलब है? दूसरी बात यह है कि न तो उन्हें तुम्हारी मदद की आवश्यकता कोई है और न ही मुझे अपनी जीवनी लिखवानी है। हम लोग नि:स्वार्थ भाव से देश की सेवा में जुटे है। इसके एवज में न धन चाहिए और न ही ख्याति ही।'

कायर

सरदार भगत सिंह को फांसी लगने वाली थी। जीवन का अंतिम दिन था। चीफ़ वार्डन सरदार चतर सिंह ने कोठरी का दरवाजा खटखटाया और प्यार से कहा, 'अब तो अंतिम समय आ गया है। मैं तुम्हारे बाप समान हूं। मेरी एक बात मान लो। मेरी एक प्रार्थना है कि अंत समय में वाह गुरु जी को याद करो और गुरुवाणी का पाठ कर लो।'

भगत सिंह बड़े जोर से हंसे और बोले', अगर यह बात कुछ समय पहले कहते तो शायद आपकी यह इच्छा पूरी कर देता, अब तो आखिरी समय आ गया हैं अगर अब मैं परमात्मा को याद करूंगा तो वह कहेगा कि यह कायर है।'

दूसरा बेटा

शहीद भगत सिंह को फांसी दी जा रही थी। फांसी चढ़ने से पहले मां से मिलते समय उनकी आंखों से आंसू निकलने लगे। इस पर उनकी मां ने उनसे पूछा, 'बेटे, तुम तो साहसी एवं निडर हो, फिर तुम्हारी आंखों में आसू कैसे?'' भगत सिंह ने उत्तर दिया, 'मां, मुझे दु:ख इस बात का हो रहा है कि तुम्हारा कोई दूसरा बेटा नहीं है, जिसे भी तुम देश की रक्षा की खातिर फांसी चढ़ते देख सको।

www.thearyasamaj.org

''प्रभो! हमें ज्ञान दो, हमें काम दो....

प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार

ऋषि:- वसिष्ठ:। देवता- इन्द्र:। छन्द:- छन्द:- बृहती।

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो तथा।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।।

सा. २५६ ॥ ऋ. ७.३२.२६॥

अन्वय:- इन्द्र ! न: क्रतुम् आभर, यथा पिता पुत्रेभ्य:। पुरुहूत ! अस्मिन् यामनि न: शिक्ष। जीवा: ज्योति: अशीमहि।

अन्वयार्थ:- (इन्द्र ! न: क्रतुम् आभर) हे परमेश्वर! हमारे लिए ज्ञान दो, प्रज्ञान दो, काम दो, यज्ञमय शुभ कार्य दो। काम दो, यज्ञमय शुभ कार्य दो। ऐसे (यथा पिता पुत्रेभ्य:) जैसे कि पता पुत्रों के लिए देता है।

(पुरुहूत ! अस्मिन् यामनि न: शिक्ष) हे बहुतों से पुकारे जाने वाले परमात्मन् ! इस जीवन में- इस संसार यात्रा में हमें शिक्षा दो, ताकि (जीवा: ज्योति: अशीमहि) जीते हुए ही हम तेरी दिव्य ज्योति को पा सकें।

हे इन्द्र ! हे परमेश्वर ! हमें ज्ञान दे, तू हमें प्रज्ञान दे, तू हमें सद्बुद्धि दे, तू हमें काम दे, तू हमें कामों में सबसे उत्तम काम यज्ञ दे, ऐसे जैसे कि इस संसार में एक पिता अपने पुत्रों को ज्ञान देता है, प्रज्ञा-प्रज्ञान अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान देता है, सद्बुद्धि देता है। वह उन्हें करने को कार्य देता है, कार्यों में भी श्रेष्ठतम् कार्य- यज्ञकार्य -शुभकर्म देता है ताकि वे भी अपने पिता के समान ज्ञानी बुद्धिमान् बनकर कर्म कर सकें, सत्कर्म कर सकें, यज्ञमय शुभकर्म कर सकें।

हे बहुतों से बहुत प्रकार से बार-बार बुलाये जाने वाले जगदीश्वर ! इस जीवन पथ में- इस गन्तव्य उत्तम धर्ममार्ग में अथवा योग में तू हमें शिक्षा दे, तू हमें प्रेरणा दे, और तू हमें ऐसी शिक्षा दे, ऐसी प्रेरणा दे कि हम जीते हुए ही, अर्थात् इस वर्तमान जीवन में ही तेरी दिव्य जोति' को, तेरे अध्यात्मप्रकाश को, तेरे अमृत-आनन्द को प्राप्त कर सकें।

इन्द्र ! न: क्रतुं आभर, यथा पिता पुत्रेभ्य'' हे परमेश्वर ! तुम हमें क्रतु दो, ज्ञान दो, प्रज्ञान दो, अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान दो। इतना ही नहीं, हे प्रभुवर ! तुम हमें ज्ञान के साथ-साथ क्रतु-काम दो और फिर क्रतु-कर्म भी देना है तो कर्मों में श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ दो, ऐसे, जैसे कि एक पिता अपने बच्चों को पहले सद्बुद्धि देता है, फिर सत्कर्म करने की प्रेरणा करता है। बच्चा जहाँ सजग होता है वहाँ उसमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है, कुछ जानने की समझने की इच्छा पैदा होती है। ऐसे ही उसमें चिकीर्षा- कुछ न कुछ करने की इच्छा भी उत्पन्न होती है। वह इच्छा उसमें इतनी तीव्र उत्पन्न होती है कि बहुत जल्दी ही मानो वह सब कुछ जान लेना चाहता है, सब कुछ समझ लेना चाहता है, बहुत जल्दी ही वह सब कुछ कर डालना चाहता है। एक पिता जब अपने लगभग दो तीन वर्ष के बालक के समीप जाता है, तो वह बालक उससे निरन्तर प्रश्न करता रहता है। वह पूछता है- ''पिता जी ! यह का (क्या) है?'' उसके प्रथम प्रश्न का वह अभी दे नहीं पाता कि वह झट फिर पूछ उठता है, ''वह का (क्या) है?'' पिता कहता है- ''बेटा ! वह चन्दा मामा है।'' बच्चा फिर पूंछता है- ''पिताजी! वह नीचे क्यों नहीं आता, ऊपर क्यों रहता है?'' इसका पिता अभी उत्तर दे नहीं पाता कि दिन में देखा हुआ बन्दर उसे याद आ जाता है और झट वह पूछने लगता है- ''पिता जी ! बन्दर कपड़े क्यों नही पहनता?'' इत्यादि। इसी प्रकार बच्चा जहाँ पग-पग पर सब कुछ करना भी चाहता हैं। माँ जहाँ दाल, चावल आदि चुनना चाहती है, तो वह कहता है, ''माँ मैं भी दाल चुनूंगा, मैं भी चावल चुनूँगा। माँ जहाँ शाक काटना चाहती है तो वह भी शाक काटना चाहता है। यदि माँ कहती है कि चावल बैटी चुनेगी, शाक बेटी काटेगी, तो फिर झट बच्चा कहता है, ''माँ जी ! फिर मैं ''क्या करुँगा?'' फिर जब माँ उसको कोई न कोई कार्य बता देती है तो इससे उसे सन्तोष होता है, अन्यथा वह अपनी दीदी के हाथ से चावल छीनता है, यह कह कर कि 'मैं चुनूँगा' शाक और चाकु छीनता है, यह कहते हुए कि- 'मैं काटूँगा।' पिता कुछ काम करता है, जैसे पुस्तकें सम्भालता है तो बच्चा भी कहता है- ''पिताजी ! मैं आपको पुस्तकें देता जाऊँगा, आप रखते जाना।'' बेटी कहती है- ''पिताजी ! मैं दूँगी और आप रखते जाना। ''इसके अतिरिक्त भी बच्चा, आपको कुछ नही जानकारी प्राप्त करता हुआ मिलेगा और अगर उसको कुछ करने को नहीं मिलेगा तो फिर वह नल को खोलते हुए पानी को भरता और उडेलता हुआ मिलेगा, या दियासलाई की डिब्बी को खोलता और सब दियासलाईयाँ बिखेरता हुआ मिलेगा, अथवा कुछ और ही तोड़ता हुआ मिलेगा, या ईन्टों और रेते में घर बनाता और बिगाड़ता हुआ मिलेगा, या किसी डिब्बे को खोलता और बन्द करता हुआ मिलेगा, इत्यादि। गरज़ यह है कि वह सदा कुछ न कुछ करता हुआ ही मिलेगा, माता-पिता आदि डाट-डपट कर सोने वा आराम से बैठने को बार-बार कहेंगे, परन्तु तो भी वह अपनी कर्मठता सें यही प्रदर्शित करता रहेगा, यही मानो कहता हुआ मिलेगा, अपनी मूक वाणी से, कि- ''माँ। सो तो मैं बहुत चुका, आराम से भी मैं बहुत बैठ चुका, अब तो मुझे कुछ जानने को चाहिए, कुछ करने को चाहिए इत्यादि? उस बच्चे की ज्ञान की भूख वास्तव में सच्ची भूख होती है, उस में काम करने की तीव्र इच्छा, जो उसे बलात् प्रेरित करती रहती है कि वह कोई काम ढूण्ढे और फिर उसे करने लगे। अब यदि माता पिता उसकी इस तीव्र जिज्ञासा को शान्त करते हैं और इस (चिकीर्षा) कर्म करने की तीव्र इच्छा का सदुपयोग करते हैं तो वह बच्चा सही दिशा की ओर अग्रसर होता रहता है, अन्यथा उसका भगवान् ही रक्षक है।

अब जैसे उस बच्चे को ज्ञान चाहिये, प्रज्ञान चाहिये, प्रज्ञा चाहिये, सद्बुद्धि चाहिये, फिर उसे कुछ करने को काम चाहिए और काम भी ऐसा चाहिये, जो श्रेष्ठ हो-शुभ हो, अर्थात् यज्ञमय कार्य हो, जिससे कि जहाँ उस का सुख- सौभाग्य बढ़ता हो वहाँ अन्यों का भी हित सम्भव होता हो। फिर वैसे ही हमें भी क्रतु-ज्ञान चाहिये, सत्कर्म चाहिये। अब जैसे उस बच्चे को यदि अच्छे माता-पिता मिल जाते हैं और वह उसको ज्ञान और सत्कर्म-यज्ञमय कर्म में प्रेरित करते हुए उसे अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर अग्रसर करते रहते हैं तो उसका सुख-सौभाग्य बढ़ता रहता हैं, वैसे ही हम भी यही चाहते हैं इसलिए तो हमने भी प्रभु से प्रार्थना की है कि-

''हे इन्द्र ! तथा पिता पुत्रेभ्य: (तथा) न: क्रतुम आभर।'' हे जगदीश्वर! जैसे संसार में एक में एक पिता अपनी सन्तान को क्रतु-प्रज्ञा सद्बुद्धि-अच्छे से अच्छा ज्ञान देता है, करने को क्रतु-कर्म-अच्छे से अच्छा काम देता है, और जहाँ तक भी वह समझता है उस को श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म अर्थात् यज्ञकर्म करने को कहता है, ताकि उसके माध्यम से वह पूज्य से

www.thearyasamaj.org

पूज्य देवों का प्यार और आशीर्वाद पा सके, और छोटे से छोटे का मान-सम्मान पा सके, वैसे ही हे परमपिता परमेश्वर! तू हमें क्रतु-ज्ञान दे,-प्रज्ञान, दे,- बुद्धि दे, सद्बुद्धि दे-और फिर तू हमें क्रतु-कर्म-काम दे-सत्कर्म दे। कर्म से पूर्व ज्ञान-बुद्धि इसलिए माँगी कि हमारे जो भी कर्म हों, वे बुद्धिपूर्वक हों, ज्ञान पूर्वक हों, विवेक पूर्वक हों, आगा पीछा सोच-विचार कर किए गए हों। तात्पर्य यह है कि प्रभुवर! हमारा ऐसा कोई भी कार्य न हो जिसके पीछे हमारी बुद्धि सजग होकर काम न कर रही हो, और हमारा ऐसा कोई सुज्ञान न हो जो कर्म से-आचरण से विहीन हो। अर्थात् हमारे ज्ञान और कर्म दोनों साथ-साथ चलते रहें। ज्ञान यदि हमारी ज्ञानेन्द्रियों और मस्तिक को अलंकृत करे तो कर्म-सकत्कर्म हमारी कर्मेन्द्रियों का श्रृंगार बने। मस्तिष्क में ज्ञान होत तो हाथों में कर्म हो। प्रभो! यह ज्ञान और कर्म-बुद्धि और कर्म तुम हमें ऐसे स्नेह और लाड-प्यार से दो जैसे कि इस संसार में एक पिता अपनी संतान को देता है। वह उसे धीरे-धीरे बुद्धिमान् बनाकर अपने सारे घर का कार्य, व्यापार का कार्य, अर्थात् दुकान, मिल वा फैक्ट्री का सब कार्य उसे सौंप देता है। कार्यभार सौंपने पर फिर कार्य करते हुए यदि वह कहीं कुछ त्रुटि करता है तो मध्य-मध्य में उसे वह पिता अपने अनुभव का ज्ञान दे-दे कर सजग करता रहता है, ताकि वह पूर्णतया अपने कार्य में निपुण हो जाये।

''हे पुरुहूत इन्द्र ! अस्मिन् यामनि न: शिक्ष'' हे बहुतों से बहुत प्रकार से बार-बार पुकारे जाने वाले प्यारे परमेश्वर ! ''पिता'' जैसे अपने पुत्र को ज्ञान देकर काम देता है और फिर मध्य-मध्य में सावधान करता रहता है, वैसे ही तुम भी हमें बुद्धि पूर्वक काम देकर, ज्ञानपूर्वक शुभकर्म-यज्ञकर्म देकर इस जीवन पथ में इस संसार यात्रा में हमें मध्य-मध्य में शिक्षा देते रहो-सजग करते रहो, ताकि हम ('जीवा: ज्योति: अशीमहि') जीव जीवित रहते हुए ही ज्योति (अध्यात्म प्रकाश) को प्राप्त करें।

अब उस (पुरुहूत अर्थात्) बहुतों से पुकारे जाने वाले (इन्द्र) परमेश्वर के वेदज्ञान के विधान वा प्रेरणा के अनुकूल यदि हमारी प्रज्ञा और कर्म होंगे तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हम अभ्युदय के साथ-साथ नि:श्रेयस के भी पात्र बनेंगे, अर्थात् हमारा तब लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे। क्योंकि जब हम लोक में बुद्धि पूर्वक सत्कर्म करेंगे तो उसका फल हमें स्वाभाविक रुप से लौकिक सुख-सौभाग्य, स्नेह-सम्मान और यह मिलेगा ही और फिर अगर हम उस बुद्धिपूर्वक किए गए सत्कर्म को भी जब निष्काम भाव से करेंगे तथा उसके परिणामस्वरूप लोक में उपलब्ध होने वाले, फल का भी जब हम त्यागपूर्वक उपभोग करेंगे तो फिर वह भोग भी हमारे बन्धन का कारण न बनकर मुक्ति का साधन बन जायेगा।

मन्त्र पर यदि गम्भीरता से हम विचार करें तो हमें उससे और भी सुन्दर प्रेरणा मिलेगी। इन्द्र! हे प्रभुदेव ! तुम हमें क्रतु दो, (क्रतु- प्रज्ञा यज्ञो वा-उणा. १.७६) तुम हमें कार्य दो, पर, कार्य दो तो वह भी यज्ञरूप कार्य ही दो।' अब यह यज्ञ क्या है- 'देवपूजा- संगति करण और दान' अपने से जो श्रेष्ठ हों, ज्ञानी हों', विद्वान् हों, तपस्वी हों, मुनि हों, महात्मा हों, संन्यासी हों, या योगी हों, उन सब का सम्मान करने की भावना हम में हो। अब उनकी पूजा, सेवा-सत्कार और मान सम्मान एवं श्रद्धापूर्वक संगति करने से हमें उन से जो स्नेह मिले, सहानुभूति मिले, ज्ञान मिले, प्रकाश मिले, आशीर्वाद मिले, उसको अपने से जो ज्ञान, आयु, अनुभव आदि से छोटे मिलें, उन्हें स्नेह-सहानुभूति पूर्वक प्रदान करते रहें। इस प्रकार यह यज्ञ भावना हमें समाज का प्रिय बना देगी। अपने से महान् पुरुषों के शरणों में जाकर झोली भरना और अपने से छोटों में में बाँट देना, यह कर्म जहाँ हमें विद्वानों के, ज्ञानियों के, ध्यानियों के, तपस्वियों के, योगियों के स्नेह, सहानुभूति एवं आशीर्वाद का पात्र बनायेगा वहाँ अपने से आयु. अनुभव एवं ज्ञान आदि से हीनों का भी मान-सम्मान एवं श्रद्धा का पात्र बनायेगा। वास्तव में यही यज्ञमय जीवन है जिसके कारण हमारी दोनों मुट्ठियों में सारा संसार होगा। एक मुट्ठी में अपने से श्रेष्ठजन, नम्रता-मान-सम्मान आदि गुणों के कारण और दूसरी में अपने से हीन जन स्नेह, दया एवं कृपा आदि के कारण। देवपूजा करते-करते, इधर हम ऊंचे से ऊंचे देवों के दर्शन पाते रहें और ज्ञानादि से हीनों एवं हीनतरों को देखते हुए उन पर कृपा करते रहें। यों चलते-चलते एक न एक दिन देवाधिदेव पुरुहूत इन्द्र के हम दर्शन पाकर उसकी पूजा में समर्पित होकर विभोर हो जायेंगे। और उसके द्वार पर विभोर होकर इतना प्यार हममें भर जायेगा कि आयु, अनुभव और ज्ञानादि से हीन, हीनतर ही नहीं, हीनतमों और यहाँ तक कि क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी चींटी आदि तक को भी तब हम अपना प्यार बाँट सकेंगे। यही सर्वात्मभाव है। 'मेरा प्रभु घट घट बसे, किससे करुँ में बैर' यह बहुत उच्च व्यवस्था है। इस प्यार का परिणाम बड़ा ही विचित्र होता है जिसको यह अपने जीवन में देखने को मिलता है वह बड़ा ही सौभाग्यशाली महापुरुष होता है। अत: 'हे इन्द्र ! न: क्रतुम् आभार, हे प्रभुवर ! तुम हमारे हाथों में शुभ कर्म दो-यज्ञमय उत्तम कर्म दो, ऐसा यज्ञमय कर्म कि जिससे सब का भला हो, सब का हित हो, जैसा कि इस द्रव्ययज्ञ से होता है। इस प्रकार हमारा प्रत्येक कार्य सर्वहित की कामना से हो।

हे पुरुहूत परमेश्वर ! तुम हमें इस जीवन पथ पर पदे-पदे शिक्षा देते रहो, प्रेरणा देते रहो। वैसे तो प्रभुवर! आप प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म पर भीतर से हमें आनन्द, उत्साह और निर्भयता तथा प्रत्येक अशुभ कर्म पर भय, शंका, लज्जा प्रदान कर सावधान करते ही रहते हो, पर फिर भी हमारी प्रार्थन्ग का अभिप्राय यह है कि हम भी तेरी उस अनहेतुकी कृपा के प्रति सदा सजग रहें।

यदि हमें जीवन में पग-पग पर उस पुरुहूत इन्द्र की शिक्षा मिलती रहे, प्रेरणा मिलती रहे और हम उस पर निरन्तर ध्यान देते रहें तो इसमें सन्देह नहीं कि एक न एक दिन हम ज्योति-परम ज्योति-परमप्रकाश-परम आनन्द को पा जायेगंगे।

हम जिसके द्वार पर खड़े हुए अलख जगा रहे हैं और जिस सें बुद्धि और कार्य मांग रहे हैं, वह कोई साधारण पुरुष नहीं है, वह कोई कंगाल पुरुष नहीं है, वह तो गत्सम्राट् है, परमैश्वर्य वाला है। संसार में किसी रहीस -धनी वा राजा के यहाँ कार्य करने पर तो केवल लौकिक ऐश्वर्य ही मिलता है परन्तु यदि उस परमैश्वर्यवान् प्राणप्रिय प्रभु के यहाँ कार्य मिल जाय तो फिर उसके द्वार से लौकिक ऐश्वर्य ही नहीं वरन् परमैश्वर्य-परमानन्दरुप धन भी मिलता है, जिसे पाकर मनुष्य सब प्रकार से सन्तुष्ट हो जाता है, सब तरह से परितृप्त हो जाता है।

वह पुरुहूत इन्द्र बहुतों का पूज्य है, बहुतों का ही नहीं वरन् सब का पूज्य है। जो आज तक उसकी पूजा नहीं करते वे भी जिस दिन उसके उपकारों को अनुभव करने लगेंगे, तो वे भी उस दिन अनायास ही उसके ही हो जायेंगे और उस के होकर उससे वह दिव्य प्रसाद पा जायेंगे कि जिसके उपरान्त उन्हें फिर कुछ प्राप्त करने को शेष नहीं रह जायेगा।

❑❑❑

www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-२ मुम्बई फरवरी - २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

माघ २०७२ (२०१७) Post Date : 25-02-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति,

टिक

श्री कृष्ण ईश्वरोपासक थे

आचार्य ब्र. नन्दकिशोर

श्री कृष्ण जी के जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक रहा है और ईश्वरोपासना अनके जीवन का अभिन्न अंग थी। वैशम्पायन जी एक स्थान जनमेजय जी से कहते हैं। कि भगवान् श्री कृष्ण आधा पहर रात बीतने पर शैया त्यागकर उठ वैठते थे और ध्यान-मार्ग में स्थित हो सत्य सनातन परमेश्वर का चिन्तन, स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना किया करते थे। परमात्मा के ध्यान के बाद दैनिक शौचादि कर्म से निवृत्त होकर स्नान करते थे, और फिर जपने योग्य गायत्री मन्त्र का जप करके अग्निहोत्र किया करते थे। तत्पश्चात् चारों वेदों के विद्वानों को बुलाकर उनसे वेदमन्त्रों का पाठ एवं उपदेश करवाकर उन्हें गोदान किया करते थे। वे इतने अधिक आध्यात्मिक तथा प्रभु-भक्त थे कि यात्रा के समय में भी वे सन्ध्योपासना आदि करना नहीं भूलते थे। इसके उनके जीवन में कितने ही उदाहरण मिलते हैं। एक बार जब वे हस्तिनापुर जा रहे थे तो उन्होंने ऋषियों के आश्रम में विश्राम किया। अगले दिन प्रात:काल का वर्णन इस प्रकार आता है-

कृत्वा पौर्वाह्निकं कृत्यं स्नान: शुचिरलंकृत:।
उपस्तये विवस्वतं पावकं च जनार्दन :।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रत:।।

(महा. उद्यो. अ. ८३)

अर्थात् श्री कृष्ण जी ने दैनिक स्नानादि कार्यों को करके प्रात: कालीन सन्ध्यावन्दन तथा दैनिक अग्निहोत्र किया। उसके बाद आश्रम के ऋषियों से कल्याणप्रद उपदेश सुना

अवतीर्ण रथात् तूर्ण, कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यापुपविशे ह।।

(महा. उद्यो. ८५-२१)

श्री कृष्ण जिस समय वृकस्थल पर पहुंचे, तब सूर्य अस्त होनेवाला था। उस समय उन्होंने रथ को रूकवाया और रथ से उतरकर शौच-स्नानादि करके सन्ध्या करने के लिए बैठ गए।

इसके अतिरिक्त जब वे विदुर जी के यहां ठहरे तो वहां भी प्रात: काला ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर सन्ध्या तथा अग्निहोत्र किया। एक बार दुर्योधनादि जब उनसे मिलने आए, तो वे सन्ध्या ही कर रहे थे। वे ऐसे आस्तिक थे कि युद्ध में भी वे सन्ध्या का त्याग नहीं करते थे-

तत: सन्ध्यामूपेस्यैव वीरों वीरावसादने।
कथंन्तौ रणे वृत्ते प्रयातौ रथमास्थितौ।।

(महा. द्रो. अ. ७२)

यहां उस समय का वर्ण है जब अर्जुन के साथ वे संसप्तकों से युद्ध कर रहे थे। उस समय भी उन दोनों ने परमात्मा की उपासना की।

ईश्वर के विषय में श्री कृष्ण जी कहते हैं-

उत्तम: पुरुषस्त्वन्य: परमात्मेत्युदाहृत:।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वर:।।

(गीता १५/१७)

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयम् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(गीता १८/६१)

प्रकृति और जीवात्मा से भिन्न एक अन्य उत्तम पुरुष है जिसे ईश्वर कहा जाता है। वह अव्यय है, ईश्वर है। वह तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर भरण-पोषण करता है। हे अर्जुन! वह उनको इस प्रकार घुमा रहा है, मानो वे किसी यन्त्र पर चढ़े हुए हैं।

प्रवेश सूचना

आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया, राजस्थान राज्य के अलवर जिले में साबी नदी के किनारे स्थित एक रमणीक संस्था है। यह गुरुकुल दिल्ली से १०० किलोमीटर एवं जयपुर से १५० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है तथा वर्तमान में कन्याओं की शिक्षा का सर्वोत्तम केन्द्र है। अत: आपसे निवेदन है कि आप गुरुकुल में अधिक से अधिक से अधिक संख्या में कन्याओं को प्रवेश दिलाकर आर्ष सिद्धांतो के प्रचार-प्रसार में योगदान दें।

गुरुकुल की विशेषताएं

१ कक्षा ६ से ९ तक तथा ११ वी व शास्त्री प्रथम वर्ष में प्रवेश प्रारम्भ।
२ महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से मान्यता प्राप्त।
३ विस्तृत भू-भाग एवं आधुनिक सुविधायुक्त विशाल भवन।
४ पोष्टिक भोजन। ५ कम्प्यूटर शिक्षा।
६ योग्य एवं अनभवी आचार्यगण।
७ शान्त सुरय एवं एकान्त वातावरण। ८ तरण ताल।
९ २४ घंटे बिजली हेतु सौर उर्जा संयंत्र।

सम्पर्क करें :

आचार्या प्रेम लता, आर्ष कन्या गुरूकुल, दाधिया
जिला अलवर, राजस्थान-३०१४०१, फोन नं. ०१४९५-२७०५०३
मो. : ०९६७२२२३८६५